माता व भाई का अरिष्ट :–

यस्य जन्मनि धीस्थाः स्युः सूर्यार्कीन्दुकुजाभिधाः ।
तस्य त्वाशु जनित्री च भ्राता च निधनं व्रजेत् ।। 4 ।।
पापेक्षितो युतो भौमो लग्नगो न शुभेक्षितः ।
मृत्युदस्त्वष्टमस्थोऽपि सौरेणार्केण वा पुनः ।। 5 ।।

जिसके जन्म समय में सूर्य, शनि, चन्द्रमा, मंगल ये सब ग्रह पंचम स्थान में स्थित हों तो उस शिशु की माता व भाई (सहोदर) की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है, अर्थात् ऐसा शिशु इनके लिए कष्टप्रद होता है ।

यदि 1.8 भाव में मंगल पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तथा किसी भी शुभ ग्रह की उस पर दृष्टि न हो, तो बालक के लिए मृत्युप्रद योग है ।

इसी पद्धति से सूर्य व शनि यदि 1.8 में पापयुक्त दृष्ट तथा शुभ ग्रहों के दृग्योग से रहित हों तब वे भी मृत्युकारक होते हैं ।

चन्द्रसूर्यग्रहेराहुश्चन्द्रसूर्ययुतो यदि ।
सौरिभौमेक्षितं लग्नं पक्षमेकं स जीवति ।। 6 ।।
कर्मस्थाने स्थितः सौरिः शत्रुस्थाने कलानिधिः ।
क्षितिजः सप्तमे स्थाने सहमात्रा विपद्यते ।। 7 ।।
लग्ने भास्करपुत्रश्च निधने चन्द्रमा यदि ।
तृतीयस्थो यदा जीवः सः याति यममन्दिरम् ।। 8 ।।

सूर्य ग्रहण या चन्द्रग्रहण के दिन या इनके आसन्न जन्म हो तथा सूर्य चन्द्रमा व राहु एकत्र स्थित हों अर्थात् कृष्ण चतुर्दशी, अमावस्यादि में जन्म हो तथा लग्न पर मंगल व शनि की दृष्टि हो तो बालक 15 दिन जीवित रह पाता है ।

दशम स्थान में शनि, षष्ठ स्थान में चन्द्रमा, सप्तम स्थान में मंगल यदि हो तो माता सहित शिशु के लिए अरिष्ट योग होता है ।

लग्न में शनि, अष्टम में चन्द्रमा तथा तृतीय में बृहस्पति हो तो बालक की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है ।

होरायां नवमे सूर्यः सप्तमस्थः शनैश्चरः ।
एकादशे गुरुशुक्रौ मासमेकं स जीवति ।।9 ।।
व्यये सर्वे ग्रहा नेष्टाः सूर्यशुक्रेन्दुराहवः ।।
विशेषान्नाशकर्तारो दृष्ट्या वा भंगकारिणः ।। 10 ।।

यदि लग्न (क्षितिज लग्न) में या नवम में सूर्य,सप्तम में शनि, ग्यारहवें भाव में बृहस्पति या शुक्र हो तो एक मास का जीवन होता है। अथवा इस योग का विचार होरा लग्न में भी कर सकते हैं।

बारहवें भाव में अरिष्ट की दृष्टि से सभी ग्रह खराब होते हैं। यह सामान्य नियम है। इनमें भी सूर्य, शुक्र, चन्द्रमा व राहु द्वादशस्थ होने पर विशेष अरिष्टकारक हो जाते हैं। यदि द्वादश भाव पर इनकी दृष्टि हो तो भी भंग अर्थात् योगभंग होता है, अर्थात् शुभ योग नहीं होता।

पापान्वितः शशी धर्मे द्यूनलग्नगतो यदि।

शुभैरवीक्षितयुतस्तदा मृत्युप्रदः शिशोः।। 11।।

सन्ध्यायां चन्द्रहोरायां गण्डान्ते निधानाय वै।

प्रत्येकं चन्द्रपापैश्च केन्द्रगैः स्याद् विनाशनम्।। 12।।

यदि चन्द्रमा 1.7.9 में पापयुक्त हो तथा कोई भी शुभ ग्रह उससे दृष्टि या योग न करे तो शिशु के लिए मृत्युकारक होता है।

यदि सन्ध्या (प्रातः या सायं) समय में जन्म हो, जन्म लग्न में चन्द्रमा की होरा हो अथवा सन्ध्या समय में गण्डान्त (कर्क, वृश्चिक, मीन का अन्तिम नवांश या अन्तिम अंश) हो एवं चन्द्रमा व पापग्रह चारों केन्द्रों में हो तों बालक की तुरन्त मृत्यु हो जाती है।

अथवा पाप ग्रह राशि के अन्त में हो तथा सन्ध्या में चन्द्रहोरा हो, तो यह योग होता है। ऐसा बृहज्जातक में कहा गया है। तदनुसार वहाँ गण्डान्त के स्थान पर भान्त अर्थात् राश्यन्त पाठ कहा है।

साधारणतया सायं या प्रातः सन्ध्या में गण्डान्त लग्न हो या गण्डान्त चन्द्रमा हो या लग्न में चन्द्रहोरा हो एवं पाप ग्रह (सूर्य, मंगल, शनि) तीन केन्द्रों में व चन्द्रमा भी चौथे केन्द्र में हो अर्थात् चारों केन्द्रों में प्रत्येक में सूर्य, चन्द्र,मंगल, शनि, क्रम व्युत्क्रम से स्थित हों तो बहुत अरिष्ट होता है।

बृहज्जातक में 'प्रत्येकं चन्द्रपापैश्च केन्द्रगैः' यह एकयोग तथा 'सन्ध्याया चन्द्रहोरायाम्' यह अलग दूसरा योग माना है।

सन्ध्या परिभाषा :–

रवेस्तु मण्डलार्धास्तात् सायं सन्ध्या त्रिनाडिका।

तथैवार्धोदयात् पूर्वं प्रातः सन्ध्या त्रिनाडिका।। 13।।

सूर्य के केन्द्रोदय से पहले तीन घड़ी अर्थात् 72 मिनट का समय एवं सूर्य केन्द्र के अस्त से आगे तीन घड़ी या 72 मिनट का समय क्रमशः सायं व प्रातः सन्ध्या कहलाती है।

पंचांगों में सूर्य के केन्द्र का उदयास्त ही इष्ट काल साधनार्थ प्रयोग किया जाता है। सूर्य की कोर का क्षितिज से स्पर्श (उदय में ऊपरी कोर व अस्त में निचली कोर) भी उदयास्त कहलाता है। लेकिन इष्टकाल साधन, सूर्य बिम्बकेन्द्र के क्षितिज स्पर्श पर आधारित होता है। अतः सूर्योदय के पंचांगस्थ काल से 72 मिनट पूर्व तक अर्थात् 57 घड़ी इष्ट से 59.59 इष्ट तक तथा सायं सूर्यास्त से 72 मिनट या तीन घड़ी आगे तक (स्थानीय दिनमान + तीन घड़ी) सन्ध्या मानी जाएगी। वराह ने बृहत्संहिता में सूर्यास्त से तारे दिखने तक एवं तारों के प्रकाश की हानि से सूर्योदय तक सन्ध्या कही है।

चक्रपूर्वापरार्धेषुक्रूरसौम्येषुकीटभे ।
लग्नगे निधनं याति नात्र कार्या विचारणा ।।14।।
व्यय शत्रुगतैः क्रूरैर्मृत्यु द्रव्यगतैरपि ।
पापमध्यगते लग्ने सत्यमेव मृतिं वदेत् ।।15।।
लग्न सप्तमगौ पापौ चन्द्रोऽपि क्रूरसंयुतः ।।
यदा नावीक्षितः सौम्यैः शीघ्रान्मृत्युर्भवेत्तदा ।।16।।

(i) दशम भाव से आगे चतुर्थ भाव तक चक्रपूर्वार्ध व चतुर्थ से दशम तक परार्ध या उत्तरार्ध कहलाता है। यदि कीट लग्न अर्थात् वृश्चिक लग्न में जन्म हो तथा पूर्वार्ध में सभी पाप ग्रह (सूर्य, मंगल, शनि, क्षीण चन्द्रादि) तथा पश्चिमार्ध में सब शुभ ग्रह हों तो परम अरिष्ट अर्थात् बालक की मृत्यु का योग है। बादरायण ने 'कीट' शब्द से वृश्चिक व कर्क दोनों लग्नों को माना है–

"पूर्वापरभागगतैरशुभैरलिकर्कटे लग्ने ।
जातस्य शिशोर्मरणं सद्यः कथयति यवनेन्द्रः ।।" (बादरायण)

मूल रुप से यह योग यवनेश्वर ने कहा है। सारावली में इसका उल्लेख वज्रमुष्टि नाम से किया गया है तथा केवल वृश्चिक लग्न में ही लागू माना है। वृश्चिक व कर्क दोनों को अधिकांश आचार्यो ने स्वीकार किया है।

(ii) यदि 6.12 में या 2.8 भावों में एक साथ पापग्रह हों तथा लग्न के दोनों ओर पापग्रह हों तो निश्चय से मृत्यु होती है।

यहाँ कुछ आचार्य 6.8 या 2.12 में एक साथ पाप ग्रह होने पर उक्त योग मानते हैं। लेकिन गार्गि ने सारे विकल्पों को स्वीकार कर लिया है। अतः 1.7 भाव की पापमध्यता हो या 6.12 या 2.8 में कई पापग्रह हों या सारे पाप ग्रह (सूर्य, मंगल, शनि) हों तो यह योग होगा। इन योगों

का विशेष विवेचन बृहज्जातक के अभिनवभाष्य के अरिष्टाध्याय में किया जा चुका है ।

इस योग में शुभ दृष्टि या योग रहने पर मृत्यु नहीं होती । यदि चन्द्रमा भी 1.7 में हो तथा पापमध्यगत हो तो योग अति तीव्र हो जाएगा, यह सारावलीकार ने माना है ।

(iii) यदि लग्न सप्तम दोनों भावों में एक–एक पापग्रह हो, चन्द्रमा भी क्रूर ग्रह से युक्त हो और सौम्य ग्रह चन्द्रमा को न देखते हों तो शीघ्र मृत्यु योग बनता है । विशेषार्थ के लिए बृहज्जातक अभिनवभाष्य 6.4 श्लोक देखें ।

चन्द्र से अरिष्ट :–

क्षीणे शशिनि लग्नस्थे पापैः केन्द्राष्टसंस्थितैः ।
यो जातो मृत्युमाप्नोति स विप्रेश न संशयः ।। 17 ।।
पापयोर्मध्यगश्चन्द्रोलग्नाष्टान्तिमसप्तमः ।
अचिरान्मृत्युमाप्नोति यो जातः स शिशुस्तदा ।। 18 ।।
पापद्वयमध्यगते चन्द्रे लग्नसमाश्रिते ।
सप्ताष्टमेन पापेन मात्रा सह मृतः शिशुः ।। 19 ।।

(i) लग्न में क्षीण चन्द्रमा हो तथा तीनों निसर्ग पाप ग्रह किसी भी तरह से केन्द्र व अष्टम में हों तो विप्रवर ! निःसन्देह बालक की जन्मते ही मृत्यु होती है, यह अतिरिक्त अर्थ है ।

सारावली में सभी पाप ग्रहों की स्थिति केन्द्र में या अष्टम में रहने पर भी उक्त योग माना है तथा इसे यवनाधिपति प्रोक्त योग कहा है । कई स्थानों पर थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ इसे कहा गया है । चन्द्रमा की क्षीणता, 1.8.12 में पाप ग्रह रहना, केन्द्र में पाप योग व शुभ ग्रहों का न होना ये अरिष्ट के मौलिक कारण हैं । इस योग में शुभ ग्रह दृग्योग न रहने पर ही सत्याचार्य ने मृत्यु कही है ।

(ii) चन्द्रमा दो पाप ग्रहों के बीच में हो तथा 1.8.7.12 में कहीं स्थित हो तो अविलम्ब ही बालक मृत्यु को प्राप्त होता है ।

वराह के मत से चन्द्रमा लग्न में हो तथा लग्न के दोनों ओर पाप ग्रह हों एवं 7.8 में एक साथ पाप ग्रह हों तो माता व पुत्र की मृत्यु होती है । इस योग में भी बली शुभ ग्रह की दृष्टि या योग न रहने पर ही उक्त फल कहना चाहिए (देखें बृह० अरिष्ट 8) ।

क्रूर ग्रहों से अरिष्ट विचार

शनैश्चरार्कभौमेषु रिःफधर्माष्टमेषु च ।
शुभैरवीक्ष्यमाणेषु यो जातो निधनं गतः ।। 20 ।।
यद्द्रेष्काणे च यामित्रे यस्य स्याद् दारुणो ग्रहः ।
क्षीणचन्द्रो विलग्नस्थः सद्यो हरति जीवितम् ।। 21 ।।
आपोक्लिमस्थिताः सर्वे ग्रहा बलविवर्जिताः ।
षण्मासं वा द्विमासं वा तस्यायुः समुदाहृतम् ।। 22 ।।

(i) शनि, मंगल व सूर्य ये तीनों शुभ ग्रहों से अदृष्ट होकर 8.9.12 भावों में कहीं हों तो बालक की मृत्यु हो जाती है।

इन तीनों ग्रहों की तीनों भावों में स्थिति रहना आवश्यक है। वराहमिहिर ने इस योग की पूर्णता हेतु लग्न में चन्द्रमा भी कहा है। इन सब ग्रहों की किस क्रम से स्थिति हो ? यह स्पष्ट किया जाता है। लग्न में चन्द्रमा, शनि बारहवें भाव में, सूर्य नवम में, मंगल अष्टम में होना आवश्यक है। दूसरी शर्त यह है कि इन ग्रहों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तभी यह योग मृत्युप्रद होगा। शुभ ग्रहों में से केवल गुरु की दृष्टि सम्भव है। वराहमिहिर व सारावलीकार दोनों इस बात से सहमत हैं। गुरु यदि बलवान होगा तो मृत्यु नहीं देगा। कम बली होगा तो थोड़ा विलम्ब से तथा नीचादिगत निर्बल होगा तो अकिंचित्कर अर्थात् योग का बाधक नहीं हो सकेगा। विशेषतया पंचमस्थ गुरु सर्वत्र दृष्टि रख सकेगा।

(ii) लग्न कुण्डली व द्रेष्काण कुण्डली में एक साथ सप्तम स्थान में पाप ग्रह हों एवं लग्न में क्षीण चन्द्रमा रहे तो तुरन्त मृत्युप्रद है। यह प्रचलित किन्तु भ्रष्ट अर्थ है।

लग्न में क्षीण चन्द्रमा अशुभ है, पापयुक्त होने पर अधिक अशुभ है। पापदृग्योग वाला क्षीण चन्द्रमा अकेला ही प्राणहरण में समर्थ है। सामान्यतः लग्न भाव में चन्द्रमा (कर्क वृष को छोड़कर) प्रायः अशुभ ही होता है।

इस श्लोक का वैकल्पिक अर्थ भी है। सारावली में 'द्रेष्काण–जामित्रगतो' कहकर शेष श्लोक यथावत् मिलता है। द्रेष्काण से जामित्र में पापग्रह होने का तात्पर्य इस तरह हो सकता है। द्रेष्काणात् जामित्रगतः अर्थात् लग्नगत द्रेष्काण राशि से सातवीं राशि में पाप ग्रह हो। वास्तविकता यह है कि लग्नगत द्रेष्काण में अर्थात् उदय द्रेष्काण में क्षीण चन्द्रमा, व सप्तम भावगत द्रेष्काण में पाप ग्रह रहने पर यह योग बनेगा। लग्न में प्रथम द्रेष्काण होगा तो सप्तम में भी सप्तम राशि का प्रथम द्रेष्काण ही रहेगा। यदि लग्न में प्रथम द्रेष्काण होगा तो प्रथम द्रेष्काण उसी राशि का रहने से एक साथ

जन्म लग्न व द्रेष्काण से सप्तम में पापग्रह रहेगा, यह तीव्रतम स्थिति है। लग्न में द्वितीय द्रेष्काण हो तो केवल लग्न द्रेष्काण राशि से सप्तम राशि में ही यह स्थिति होगी।

(iii) यदि जन्म समय में सभी ग्रह निर्बल होकर 3.6.9.12 अर्थात् आपोक्लिम भावों या राशियों में हो तो वह बालक दो मास या छह मास ही जीवित रहता है।

मातृकष्टविचार :-

त्रिभिः पापग्रहैः सूतौ चन्द्रमा यदि दृश्यते।
मातृनाशो भवेत्तस्य शुभैर्दृष्टे शुभं वदेत्।। 23।।
धने राहुर्बुधः शुक्रः सौरिः सूर्यो यदा स्थितः।
तस्य मातुर्भवेन्मृत्युर्मृते पितरि जायते।। 24।।
पापात्सप्तमरन्ध्रस्थे चन्द्रे पापसमन्विते।
बलिभिर्पापकैर्दृष्टे जातो भवति मातृहा।। 25।।
उच्चस्थोवाऽथनीचस्थः सप्तमस्थो यदा रविः।
पानहीनो भवेद् बालः अजाक्षीरेण जीवति।। 26।।

(i) यदि तीन पाप ग्रहों (सूर्य, मंगल, शनि) द्वारा चन्द्रमा देखा जाता हो तथा उस चन्द्रमा पर शुभ दृष्टि न हो तो तो बालक की माता का परम अनिष्ट होता है। अर्थात् शुभदृष्ट रहने पर परम हानि नहीं होती।

(ii) यदि द्वितीय स्थान में राहु, बुध, शुक्र, शनि व सूर्य हो तो पिता की मृत्यु जन्म से पूर्व ही हो चुकी होती है तथा माता की मृत्यु जन्म के बाद होती है।

(iii) यदि चन्द्रमा पाप ग्रह से युक्त होकर बलवान् पाप ग्रहों से देखा जाए, तो यह एक योग है। चन्द्रमा पाप युक्त हो तथा चन्द्र से 6.7 भावों में एक साथ पाप ग्रह हों, यह दूसरा योग है। इनमें बालक की माता की मृत्यु होती है।

(iv) जन्म समय में लग्न से सप्तम भाव में उच्चस्थ या नीचस्थ सूर्य हो तो बालक को दूध नहीं मिलता, वह बकरी के दूध से पलता है।

'बकरी का दूध' यहाँ माँ के अतिरिक्त किसी अन्य स्रोत से प्राप्त दूध का उपलक्षण है, जिसमें डिब्बाबन्द दूध पाउडर, आया का दूध, अन्य स्त्री, आदि भी शामिल है। जन्म समय में सूर्य से पिता का व चन्द्रमा से माता का विचार होता है। चन्द्रमा पर अति पाप प्रभाव माता के लिए कष्टकारक ही है।

चन्द्राच्चतुर्थगः पापो रिपुक्षेत्रे यदा भवेत् ।
तदा मातृवधं कुर्यात् केन्द्रे यदि शुभो न चेत् ।। 27 ।।
द्वादशे रिपुभावे च यदा पापग्रहो भवेत् ।
तदा मातुर्भयं विद्याच्चतुर्थे दशमे पितुः ।। 28 ।।
लग्ने क्रूरो व्यये क्रूरो धने सौम्यस्तथैव च ।
सप्तमे भवने क्रूरः परिवारक्षयङ्करः ।।29 ।।

चन्द्रमा से चतुर्थ स्थान में शत्रुक्षेत्री होकर कोई पापग्रह स्थित हो तथा केन्द्र में कोई मी शुभग्रह न हो तो माता की मृत्यु हो जाती है ।

यदि 6.12 में एक साथ पाप ग्रह स्थित हों तो माता के लिए एवं 4.10 में पाप ग्रह स्थित हों तो पिता के लिए कष्टकारक योग होता है ।

लग्न, द्वादश, सप्तम में तीनों स्थानों पर पापयोग हो तथा धन भाव में शुभ ग्रह हो तो समस्त परिवार के लिए कष्टकारक योग होता है ।

लग्नस्थे च गुरौ सौरौ धने राहौ तृतीयगे ।
इति चेज्जन्मकाले स्यान्माता तस्य न जीवति ।। 30 ।।
क्षीणचन्द्रात् त्रिकोणस्थैः पापैः सौम्यविवर्जितैः ।
माता परित्यजेद्बालं षण्मासाच्च न संशयः ।। 31 ।।
एकांशकस्थौ मन्दारौ यत्रकुत्रस्थितौ यदा ।
शशिकेन्द्रगतौ तौ वा द्विमातृभ्यां न जीवति ।। 32 ।।

लग्न में बृहस्पति, द्वितीय में शनि व तृतीय में राहु हो तो बालक की माता जीवित नहीं रह पाती है ।

क्षीण चन्द्रमा से 5.9 भावों में सभी पाप ग्रह हों तथा कोई भी शुभ ग्रह वहाँ न हो तो बालक को उसकी माता त्याग देती है । उक्त फल छह मासों के भीतर निःसन्देह होता है ।

यदि किसी भी भाव में शनि व मंगल एक नवांश में हों अथवा चन्द्रमा से 1.4.7.10 में शनि मंगल हों तो दो माताओं से पालित होकर भी जीवित नहीं रहता ।

सारावली में तृतीय योग के सन्दर्भ में कहा गया है कि 1.7 में शनि व मंगल हो तो निश्चय ही माता त्याग देती है । अंश शब्द का अर्थ यहाँ नवांश ही अधिक उपयुक्त है । एक भी अंश (युति) में रहने पर तो उत्कट फल होगा ही, लेकिन एक नवांशगत रहने पर भी अशुभ फल होता है ।

पितृकष्ट विचार :–

लग्ने मन्दो मदे भौमः षष्ठस्थाने च चन्द्रमाः ।

इति चेज्जन्मकाले स्यात् पिता तस्य न जीवति ।। 33 ।।

लग्ने जीवो धने मन्दरविभौमबुधास्तथा ।

विवाहसमये तस्य बालस्य म्रियते पिता ।। 34 ।।

सूर्यः पापेन संयुक्तो ह्यथवा पापमध्यगः ।

सूर्यात् सप्तमगः पापस्तदा पितृवधो भवेत् ।। 35 ।।

लग्न में शनि, सप्तम में मंगल, षष्ठ में चन्द्रमा हो तो बालक का पिता जीवित नहीं रहता है ।

लग्न में गुरु व द्वितीय में शनि, सूर्य, मंगल, बुध हो तो बालक के विवाह के समय पिता की मृत्यु हो जाती है ।

यदि जन्म समय में सूर्य पाप ग्रह से युक्त हो अथवा दो पापग्रहों के मध्य में हो तथा सूर्य से सप्तम में भी पाप ग्रह हो तो पिता की मृत्यु या वध हो जाता है ।

सप्तमे भवने सूर्यः कर्मस्थो भूमिनन्दनः ।

राहुर्व्यये च यस्यैव पिता कष्टेन जीवति ।। 36 ।।

दशमस्थो यदा भौमः शत्रुक्षेत्रसमाश्रितः ।

म्रियते तस्य जातस्य पिता शीघ्रं न संशयः ।। 37 ।।

रिपुस्थाने यदा चन्द्रो लग्नस्थाने शनैश्चरः ।

कुजश्च सप्तमस्थाने पिता तस्य न जीवति ।। 38 ।।

सातवें भाव में सूर्य, दशम में मंगल व द्वादश में राहु हो तो पिता बड़े कष्ट पाता है ।

दशम में मंगल यदि शत्रु की राशि में स्थित हो तो जातक के पिता की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है ।

यदि षष्ठ स्थान में चन्द्रमा, लग्न में शनि, सप्तम में मंगल हो तो जातक का पिता जीवित नहीं रहता ।

इन योगों में सामान्यतः माता व पिता का सुख बहुत कम होता है । 1.7 में शनि रहने से सारावली में मातृत्याग योग कहा है । पीछे श्लोक 32 में केन्द्रों में शनि मंगल का दृष्टि सम्बन्ध मातृनाशक कहा है तथा यहाँ पितृनाशक कहा है । वास्तव में इन योगों में से थोड़ी बात किसी योग की व थोड़ी बात दूसरे योग की रहने पर भी अर्थात् इन योगों के परस्पर

आंशिक सम्मिश्रण में भी हमने अनिष्ट होते देखा है। अतः पाठकों को स्वबुद्धि का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

भौमांशकस्थिते भानौ शनिना च निरीक्षिते।
प्राग्जन्मतो निवृत्तिः स्यान्मृत्युर्वाऽपि शिशोः पितुः।। 39।।
चतुर्थदशमे पापौ द्वादशे च यदा स्थितौ।
पितरं मातरं हत्वा देशाद्देशान्तरं व्रजेत्।। 40।।
राहु जीवौ रिपुक्षेत्रे लग्ने वाऽथ चतुर्थके।
त्रयोविंशतिमे वर्षे पुत्रस्तातं न पश्यति।। 41।।

(i) यदि सूर्य नवांश में मेष या वृश्चिक हो तथा शनि सूर्य को देखे तो बालक के जन्म से पूर्व ही पिता घर छोड़ देता है या संसार ही छोड़ देता है।

हमारे क्रमिक उदाहरण में सूर्य सप्तम भाव में मेष नवांश में है तथा शनि की तृतीय पूर्ण दृष्टि भी है, किन्तु पिता के विषय में उक्त योग घटित नहीं हुआ। यह योग होरासार में थोड़े भेद से कहा है—सिंह नवांश में मंगल 4.9 में गुरु शुक्र से अदृष्ट हो तो पिता को पुत्र नहीं देखता (अ० 5 श्लोक 7)।

(ii) लग्न से 4.10 भावों में या 4.12 में एक साथ दो पाप ग्रह बैठे हों तो माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् जातक घर से बाहर चला जाता है।

(iii) राहु व बृहस्पति 1.4.6 में हों तो जातक की 23 वर्ष की अवस्था में पिता की मृत्यु या पिता से अलगाव हो जाता है।

मातृपितृ कष्ट विचार का आधार :—

मातुः पिता च जन्तूनां चन्द्रो माता तथैव च।
पापदृष्टियुतो मातुः पापमध्यगतोऽपि वा।। 42।।
पित्ररिष्टं विजानीयाच्छिशोर्जातस्य निश्चितम्।
भानोः षष्ठाष्टमर्क्षस्थैः पापैः सौम्य विवर्जितैः।।
चतुरस्रगतैर्वापि पित्ररिष्टं विनिर्दिशेत्।। 43।।
एवं चन्द्रात् स्थितैः पापैर्मातुः कष्टं विचारयेत्।
बलाबलविवेकेन कष्टं वा मृत्युमादिशेत्।। 44।।

सूर्य जातक का पितृकारक व चन्द्रमा मातृकारक होता है। अतः सूर्य के साथ पापदृष्टि, पापयोग, पापमध्यगतत्व रहने पर पिता को कष्ट होता है।

इसी पद्धति से चन्द्रमा से 1.6.8 में पापग्रह रहने से, चन्द्रमा पर अधिक पापदृष्टि, पापयोग या पापमध्यत्व रहने से माता को कष्ट व बलाबल के विचार से मृत्यु भी समझनी चाहिए। श्लोक 42-44 भी पृथुयशा के होरासार अध्याय 5 में मामूली भेद से मिलते हैं। पृथुयशा वराहमिहिर के पुत्र थे। इन्होंने कहा है कि मैं होराशास्त्र का सार कहता हूँ। यह होरा पाराशरहोरा थी या वराहहोरा? विचार करने से प्रतीत होता है कि पृथुयशा ने पाराशरहोरा (शास्त्र) का ही सारांश अपने होरासार में प्रस्तुत किया है। पाराशरहोरा व होरासार में बहुत से श्लोक मिलते या बिल्कुल समान हैं।

इतिबृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायामरिष्टाध्यायो दशमः ।। **10** ।।

11

।। अथ अरिष्टभंगाध्यायः ।।

शुभग्रहः अरिष्टनाशक –

एकोऽपि ज्ञार्यशुक्राणां लग्नात् केन्द्रगतो यदि ।
अरिष्टं निखिलं हन्ति तिमिरं भास्करो यथा ।। 1 ।।
एक एव बली जीवो लग्नस्थोऽरिष्टसंचयम् ।
हन्ति पापक्षयं भक्त्या प्रणाम इव शूलिनः ।। 2 ।।

लग्न से केन्द्र 1.4.7.10 में यदि बुध, गुरु, शुक्र में कोई एक भी बलवान् हो तो सारे अरिष्टों को उसी तरह दूर कर देता है, जैसे अन्धकार को सूर्य।

अकेला बृहस्पति ही यदि बली होकर लग्न में स्थित हो तो सारे अरिष्टों को दूर करता है, जैसे भक्तिपूर्वक शंकर को प्रणाम करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

श्लोक 21 का ही आशय सारावली 12.1 में भी यथावत् प्रकट किया गया है।

एक एव विलग्नेशः केन्द्रसंस्थो बलान्वितः।
अरिष्टं निखिलं हन्ति पिनाकी त्रिपुरं यथा।। 3।।
शुक्लपक्षे क्षपाजन्म लग्ने सौम्य निरीक्षिते।
विपरीतं कृष्णपक्षे तथारिष्टविनाशनम्।। 4।।

यदि केवल लग्नेश ही बनवाल् होकर केन्द्र में हो तो सारे अरिष्ट को नष्ट कर देता है। जैसे शिवजी त्रिपुरासुर को नष्ट कर देते हैं।

शुक्लपक्ष में रात्रि में जन्म हो तथा लग्न कोई शुभ ग्रह देखता हो एवं कृष्ण पक्ष में दिन में जनम हो तथा लग्न शुभदृष्ट हो तो समस्त अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं।

तुला लग्न में दीर्घायु :-

व्ययस्थाने या सूर्यः तुला लग्ने तु जायते।
जीवेत् स शतवर्षाणि दीर्घायुर्बालको भवेत्।। 5।।

यदि तुला लग्न में द्वादश स्थान में कन्याराशिगत सूर्य हो तो बालक सौ वर्ष तक जीवित रहता है अथवा दीर्घायु होता है।

गुरुभौमौ यदा युक्तौ गुरुदृष्टोऽथवा कुजः।
हत्वारिष्टमशेषं च जनन्याः शुभकृद् भवेत्।। 6।।
चतुर्थदशमे पापः सौम्यमध्ये यदा भवेत्।
पितुः सौख्यकरों योगः शुभै केन्द्रत्रिकोणगेः।। 7।।
सौम्यान्तर्गतैः पापैः शुभैः केन्द्रत्रिकोणगैः।
सद्यो नाशयतेऽरिष्टं तद्भावोत्थफलं न तत्।। 8।।

यदि गुरु व मंगल साथ हों या मंफल पर बृहस्पति की दृष्टि हो तो अरिष्टों का नाश एवं माता का शुभ होता है।

4.10 भाव में कोई पापग्रह हो तथा वह शुभ ग्रहोंके बीच में गया हो अथवा केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रह हों तो पिता के लिए शुभ है।

यदि सभी पाप ग्रह शुभ मध्य में हों तो शुभ ग्रह 1.4.5.7.9.10 में हों तो सद्यः अरिष्ट का नाश होता है तथा पापयुक्त भाव का भी अशुभ फल शान्त हो जाता है।

संक्षेप में लग्नेश या शुभग्रहों की केन्द्र त्रिकोण में स्थिति, पापग्रहों पर शुभ दृष्टि या शुभमध्यत्व या भावेशानुसार शुभाशुभ ग्रहों के बलाबल से, चन्द्र, सूर्य या लग्न के शुभ से अरिष्ट नष्ट होते हैं।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायामरिष्टभंगाध्याय एकादशः ।। 11 ।।

12

।। अथ भावविवेकाध्यायः ।।

देहं रूपं च ज्ञानं च वर्ण चैव बलाबलम् ।
सुखं दुःखं स्वभावं च लग्नभावान्निरीक्षयेत् ।। 1 ।।
धनं धान्यं कुटुम्बांश्च मृत्युजालममित्रकम् ।
धातुरत्नादिकं सर्व धनस्थानान्निरीक्षयेत् ।। 2 ।।
विक्रम भृत्यभ्रात्रादि चोपदेश प्रयाणकम् ।
पित्रोर्वैमरणं विज्ञो दुश्चिक्याच्च निरीक्षयेत् ।। 3 ।।
वाहनान्यथ बन्धूंश्च मातृसौख्यादिकान्यपि ।
निधि क्षेत्रं गृहं चापि चतुर्थात् परिचिन्तयेत् ।। 4 ।।

(i) शरीर, रुप, ज्ञान, रंग, बलावल, सुख, दुख स्वभावादि का लग्न भाव से विचार करना चाहिए।

धन, धान्य, कुटुम्ब, मृत्यु, शत्रु, धातु, अर्थात् संचित धन का द्वितीय भाव से। पराक्रम, नौकर, भाई, उपददेश, विददेश, यात्रा, माता–पिता की मृत्यु तीसरे भाव से तथा वाहन, बन्धु बान्धव, माता, सुख, गड़ा धन, खेत, घर, अचल सम्पत्ति आदि का विचार चतुर्थ भाव से करना चाहिए।

यन्त्रमन्त्रौ तथा विद्यां बुद्धेश्चैव प्रबन्धकम् ।
पुत्रराज्यापभ्रंशादीन् पश्येत्पुत्रालयाद् बुधः ।। 5 ।।
मातुलातंकशंकानां शत्रूंश्चैव व्रणादिकान् ।
सपत्नीमातरं चापि षष्ठभावान्निरीक्षयेत् ।। 6 ।।
जायामध्वप्रयाणं च वाणिज्यं नष्टवीक्षणम् ।
मरणं च सर्वदेहस्य जाया भावान्निरीक्षयेत् ।। 7 ।।
आयूरणं रिपुं चापि दुर्ग मृतधनं तथा ।
गत्यनूकादिकं सर्व पश्येद् रन्ध्राद् विचक्षणः ।। 8 ।।

यन्त्र, मन्त्र, विद्या, बुद्धि, प्रबन्ध शक्ति, पुत्र, राज्य की हानि, पदावनति आदि का विचार पंचम भाव से; मामा, आतंक, डर, आशंका, शत्रु, घाव चोट, सौत, सास का विचार षष्ठ भाव से; स्त्री, यात्रा, व्यापार, डूबा धन, नष्ट वस्तु, अपनी मृत्यु का विचार सप्तम भाव से; आयु, युद्ध, शत्रु किला, डूबा, धन, मृत्यु के बाद की गति आदि का विचार अष्टम भाव से करना चाहिए ।

भाग्यं श्यालं च धर्म च भ्रातृपत्न्यादिकांस्तथा ।
तीर्थयात्रादिकं सर्व धर्मस्थान्निरीक्षयेत् ।। 9 ।।
राज्यं चाकाशवृतिं च मानं चैव पितुस्तथा ।
प्रवासस्य ऋणस्यापि व्योमस्थान्निरीक्षयेत् ।।10 ।।
नाना वस्तुभवस्यापि पुत्रजायादिकस्य च ।
आयं वृद्धिं पशूनां च भवस्थान्निरीक्षयेत् ।। 11 ।।
व्ययं च वैरिवृत्तान्तरिः फमन्त्यादिकं व्ययात् ।
एवं भावफलं सम्यक् तत्तत्संज्ञानपूर्वकम् ।। 12 ।।

भाग्य, साला, धर्म, भ्रात्पत्नी, तीर्थयात्रा आदि नवम भाव से; राज्य अनिश्चित आमदनी, मान–सम्मान, पिता, प्रवास, कर्ज, आदि दशम भाव से; सभी वस्तुओं की प्राप्ति, भौतिक लाभ, जैसे स्त्री पुत्र धन आदि की प्राप्ति, आय, वृद्धि, सम्पत्ति आदि का विचार एकादश भाव से; खर्च, शत्रु, शत्रुओं का वृतान्त, आदि का विचार बारहवें भाव से ; इस प्रकार भावफल का विचार बुद्धिपूर्वक करना चाहिए ।

भावफल विचार के मौलिक नियम :–

यो यो शुभैर्युतो दृष्टो भावों वा पतिदृष्टयुक् ।
युवा प्रबुद्धो राज्यस्थः कुमारो वापि यत्पतिः ।। 13 ।।

तदीक्षणवशात् तत्तद् भवसौख्यं वदेद् बुधः ।

यद्यद्भावपतिर्नष्टस्त्रिकेशाद्यैश्च संयुतः ।। 14 ।।

भावं न वीक्षते सम्यक् सुप्तो वृद्धो मृतोऽथवा ।

पीडितो वास्य भावस्य फलं नष्टं वदेदध्रुवम् ।। 15 ।।

(i) जिस भाव में उस भाव का स्वामी या शुभ ग्रह बैठा हो अथवा शुभ ग्रहों से दृष्ट हो अथवा जिस भाव का स्वामी 'युवावस्था' में हो या 'कुमारावस्था' में हो या 'प्रबुद्धावस्था' में हो अथवा लग्न से (अथवा विचारणीय भाव से) दशम स्थान में हो । ऐसी अवस्था वाला भावेश यदि भाव को देखे या योग करे तो उस भाव से सम्बन्धित सारे शुभ फल होते हैं ।

(ii) जिस भाव का स्वामी 'नष्टावस्थाफत' हो, 6.8.12 भावेशों से यशुक्त हो या इन्हीं भावों में गया हो, अपने भाव को अधिक दृष्टि से न देखता हो ।

(iii) अथवा 'सुप्तावस्था' 'वृद्धावस्था' या 'मृतावस्था' मे हो या 'पीडितावस्था' में हो तो उस भाव से सम्बन्धित सारे शुभ फल नष्ट हो जाते हैं ।

ये भाव विचार के मौलिक नियम बताए गए हैं । जो भावेश अवस्थानुसार शुभ हो व शुभ ताा अशुभावस्था में हो तो अशुभ फल होता है । यहाँ भावेश योग, भाव पर दृष्टि, शुभ योग, शुभ दृष्टि के अतिरिक्त भावेशों की अवस्थाओ से भी विशेष निर्णय करना चाहिए । अवस्था के विषय में आगे अवस्थाध्याय में विस्तार से बताया जाएगा । संक्षेप में विषम राशि में 6-6 अंशों में क्रमशः बाल, कुमार, युवा, वृद्ध, व मृत अवस्था तथा सम राशियों में विपरीत क्रम से अर्थात् मृत, वृद्ध व कुमार, बाल ये 6-6 अंशों की अवस्थाएँ हैं । युवावस्था में पूर्ण, कुमारावस्था में आधा तथा **वृद्धावस्था** में मामूली एवं मृत में शून्य फल होता है । **पीड़ित** अर्थात् शत्रुराशिगत, पापयुक्त अस्त अथवा नीचगत ग्रह होता है । **प्रबुद्ध** अर्थात् जाग्रत अवस्था अर्थात् स्वोच्चस्थ या स्वगृही एवं **नष्टावस्था** अर्थात् **मृतावस्था** होती है ।

ग्रहों का कारकत्व :–

शुक्रः शुक्रं च नेत्रं च चन्द्रमाः मनसस्तथा ।

आत्मा वै दिनकृत्तत्र जीवो जीवितसौख्यदः ।। 16 ।।

क्रोधः पराक्रमः भौमो बुधो बालत्वधीमतः ।
शनिर्दुःखप्रदो ज्ञेयः प्रपदः पार्श्वकस्तथा ।। 17 ।।
राहुरैश्वर्यकं विद्धि योगेक्षणवशान्मुने ।
संक्षेपेणैतदुदितमन्यद् बुद्ध्यनुसारतः ।। 18 ।।

शुक्र ग्रह वीर्य का, चन्द्रमा मन का, सूर्य आत्मा का, गुरु जीवनी शक्ति का, मंगल क्रोध व पराक्रम का, बुध चंचलता व बल बुद्धि का, शनि दुःखदायक नौकर व पड़ौसियों का कारक है । राहु ऐश्वर्यदायक है । भाव व ग्रहों के बलाबल, योग व दृष्टि आदि से उक्त विषयों का निर्णय करना चाहिए । यह संक्षेप से ग्रहों का कारकत्व कहा है ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
भावविवेकाध्यायो द्वादशः ।। 12 ।।

13

।। अथ लग्नभावाध्यायः ।।

देहसुख विचार –

तनुपः पापसंयुक्तस्त्रिकगो देहसौख्यहृत् ।
केन्द्रकोणगतश्चासौ सदा देहसुखं दिशेत् ।। 1 ।।
लग्नपोऽस्तंगतो नीचे शत्रुभे रोगकृद् भवेत् ।
शुभाः केन्द्रत्रिकोणस्थाः देहं सौख्यप्रदाः स्मृताः ।। 2 ।।

यदि लग्नेश पाप युक्त हो, 6.8.12 भावों में गया हो तो शरीर का सुख कम करता है । वही लग्नेश यदि केन्द्र त्रिकोण में हो तो शरीर सुख देता है ।

लग्नेश अस्तंगत, नीचगत, शत्रुक्षेत्री हो तो रोगकारक कहाता है यदि शुभ ग्रह केन्द्रकोण में हो तो लग्नेश का उक्त योग रहने पर भी शरीर-सुख रहता है ।

लग्नेचन्द्रेऽथवाक्रूरग्रहैर्युक्तेऽथवेक्षिते ।
सौम्यदृष्टिविहीने तु जन्तोर्देहसुखं न हि ।। 3 ।।

लग्ने सशुभे सुभगः पापे रूपविवर्जितः ।
सौम्यखेटैर्युते दृष्टे देहसौख्यं भवेद्ध्रुवम् ।। 4 ।।

लग्न या चन्द्रमा पर क्रूर ग्रह की दृष्टि या योग हो तथा शुभ ग्रह उसे न देखे तो शरीर-सुख की अल्पता रहती है।

लग्न में शुभ ग्रह हो तो मनुष्य सुन्दर व आकर्षक तथा पाप ग्रह हो तो रूपहीन या अनाकर्षक होता है। लग्न पर शुभ ग्रह की दृष्टि या योग हो तो अवश्य ही शरीर सौख्य होता है।

लग्नेशो ज्ञोगुरुर्वापि शुक्रो वा केन्द्रकोणगः ।
दीर्घायुर्धनवान् जातो बुद्धिमान् राजवल्लभः ।। 5 ।।
लग्नेशे चरराशिस्थे शुभग्रहनिरीक्षिते ।
कीर्तिश्रीमान् महाभोगी देहसौख्यसमन्वितः ।। 6 ।।
बुधौजीवोऽथवा शुक्रो लग्ने चन्द्र समन्वितः ।
लग्नात्केन्द्रगतश्चापि राजलक्षणसंयुतः ।।7 ।।

लग्नेश, बुध, गुरु, शुक्र इनमें से कोई भी केन्द्र या त्रिकोण में हो तो जातक दीर्घायु, धनवान, बुद्धिमान् व राजप्रिय होता है।

लग्नेश यदि चरराशि में हो तथा शुभ ग्रह लग्नेश को देखता हो तो जातक यशस्वी, श्रीमान्, भोगवान् व शरीर–सुख पाने वाला होता है।

यदि लग्न में चन्द्रमा के साथ बुध या गुरु या शुक्र हो या लग्न से केन्द्र में इसी तरह से चन्द्र बुध, चन्द्र शुक्र या चन्द्र गुरु योग हो तो जातक राजसी चिन्हों से युक्त होता है।

ससौरे सकुजे वापि लग्ने मेषे वृषे हरौ ।
राश्यंश सदृशे गात्रे स जातो नालवेष्टितः ।। 8 ।।
चतुष्पदगते भानौ परे वीर्यसमन्विताः ।
द्विस्वभावगता जातौ यमलावितिनिर्दिशेत् ।। 9 ।।
लग्ने राहुसमायुक्ते तथा सोमनिरीक्षते ।
लग्नांशे मन्दसूरी चेज्जातश्च यमलो भवेत् ।। 10 ।।

मेष, वृष, सिंह लग्न में शनि या मंगल हो तो लग्नगत नवांश की राशि से संकेतित अंग में बालक नालवेष्टित होता है।

सूर्य यदि चतुष्पद राशि (मेष, वृष, सिंह, धनु, मकर का पूर्वार्ध) में हो तथा शेष ग्रह बली होकर द्विस्वभाव राशि में हों तो यमल (जुड़वाँ) जन्म होता है।

यदि लग्न में राहु हो तथा उसे चन्द्रमा देखे, साथ में लग्न नवांश में शनि गुरु दोनों हों तब भी जुड़वाँ जन्म होता है।

रवीन्दू चैक भावस्थावेकांशक समन्वितौ।

त्रिमात्रा च त्रिभिर्मासैः पित्राभ्रात्रा च पोषितः।। 11।।

एवं चन्द्राच्च विज्ञेयं फलं जातककोविदैः।

अथ जातस्य गात्रेषु व्रणलक्ष्मादिकं श्रृणु।। 12।।

(i) सूर्य व चन्द्रमा यदि एक ही भाव में तथा एक ही नवांश में हों तो जातक तीन माताओं का दूध पीता है तथा तीन मास बाद पिता व भाई द्वारा पाला जाता है।

उक्त स्थिति अमावस्या को जन्म होने पर प्रतिमास सम्भव होगी। अमाजन्म का मुख्य फल स्व हानि व परिवार हानि ही है। अतः इस योग में जन्म होने पर बालक के शरीर को व माता (चन्द्रकारक होने से) को विशेष कष्ट योग बनते हैं ऐसा समझें। शब्दार्थ को यथावत् लेना अव्यावहारिक ही है।

(ii) जिस प्रकार लग्न से विचार किया है, तदनुसार ही चन्द्रमा से भी विचार करना चाहिए।

साथ ही जिस भाव का विचार करना हो, उसकी विचार पद्धति का सूत्रपात भी यहाँ है। जिस भाव से केन्द्र त्रिकोण में शुक्र ग्रह हो, जिस भाव में भावेश या शुभ ग्रहों का दृग्योग हो, जिस भाव का स्वामी 6.8.12 में न गया हो, जिस भाव का स्वामी पूर्वोक्त प्रकार से अवस्थाबली हो, शत्रुक्षेत्री, नीचगत या अस्त न हो, उस भाव से सम्बन्धित फलों की वृद्धि होगी।

इसके बाद जातक के शरीर में तिल, चिन्ह, मस्सा आदि का विचार बताया जा रहा है।

शरीर चिन्ह विचार :–

शिरो नेत्रे तथा कर्णौ नासिके च कपोलकौ।

हनूर्मुखं च लग्नाद्या तनावाद्यदृकाणके।। 13।।

मध्यद्रेष्काणगे लग्ने कण्ठोंऽसौ च भुजौ तथा।

पार्श्वे च ह्रदये क्रोडे नाभिश्चेति यथाक्रमम्।।14।।

बस्तिर्लिंगगुदेमुष्कौ ऊरू जानू च जंघके।

पादश्चेत्युदितैवाममंगे ज्ञेयं तृतीयके।। 15।।

यस्मिन्नंगे स्थितः पापो व्रणं तत्र समादिशेत् ।

नियतं सबुधैः क्रूरैः सोम्यैर्लक्ष्म वदेद् बुधः ।। 16 ।।

(i) लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो तो लग्न सिर, 1.12 भाव नेत्र, 3.11 कान, 4.10 नाक, 5.9 गाल, 6.8 ठुड्डी, 7 मुख समझकर क्रमशः गणना करें ।

(ii) लग्न में द्वितीय द्रेष्काण हो तो लग्न कण्ठ, 2.12 कन्धे, 3.11 भुजा, 4.10 पार्श्व (बगल), 5.9 हृदय, 6.8 पेट व सप्तमभाव नाभि है ।

(iii) लग्न तृतीय द्रेष्काण हो तो लग्न बस्ति, 2.12 लिंग व गुदा, 3.11 अण्डकोष, 4.10 जाँधें, 5.9 घुटने, 6.8 पिण्डली व सप्तम भाव पैर है । दृश्य चक्रार्ध या उदित 6 राशि के भावों में वामांग व अनुदित या अदृश्य चक्र में दायाँ अंग समझना चाहिए ।

(iv) जिस भाव के जिस द्रेष्काण में पापग्रह हो वहां घाव तथा जिस भाव में बुधयुक्त कई पापग्रह हो वहाँ तिलादि समझना चाहिए ।

लग्न में जो उदित द्रेष्कांण है तदनुसार प्रथम, मध्यम व तृतीय क्रम से अंग न्यास शुरू कर द्रेष्काण भेद से तीन विभागों के तीन तीन अंग एकभाव में आ जाएँगे । उदाहरणार्थ हमारे क्रमिक उदाहरण में लग्न में प्रथम द्रेष्काण उदित है तथा कर्क लग्न है अतः लग्न के प्रथम द्रेष्काण में सिर, द्वितीय द्रेष्काण में गला व तृतीय द्रेष्काण में वस्ति स्थित है । इत्यादि । इसकी विशेष व्याख्या 'बृहज्जातक अभिनव भाष्य' अध्याय 5 श्लोक 24 में लिख चुके हैं ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां

लग्नभावफलाध्यायस्त्रयोदशः ।। 13 ।।

14

अथ धनभावफलाध्यायः

धनलाभ योग :–

धनेशो धनभावस्थः केन्द्रकोणगतोऽपि वा ।

धनवृद्धिकरो ज्ञेयस्त्रिकस्थो धनहानिकृत् ।। 1 ।।

धनदश्च धने सौम्यः पापो धनविनाशकृत् ।

सौम्यग्रहयुते दृष्टे धनलाभं विनिर्दिशेत् ।। 2 ।।

धनेश यदि द्वितीय भाव में हो, अथवा केन्द्र त्रिकोण में हो तो धनवृद्धिकारक होता है। यदि धनेश 6.8.12 में स्थित हो तो धन–हानिप्रद होता है।

धन भाव में शुभ ग्रह धनप्रद तथा धन भाव में पाप ग्रह धननाशक होते हैं। यदि धनस्थ शुभ ग्रह या धनेश, शुभ युक्त या दृष्ट हो तो धन लाभ होता रहता है।

धनाधिपो गुरुर्यस्यधनभावगतो भवेत्।
भौमेन सहितो वापि धनवान् स नरो भवेत्।।3।।
धनेशे लाभभावस्थे लाभेशे वा धनं गते।
तावुभौ केन्द्रकोणस्थौ धनवान् मानवो भवेत्।।4।।

(i) यदि धनभावेश गुरु हो अर्थात् वृश्चिक या कुम्भ लग्न में हो तथा गुरु द्वितीय भाव में ही हो, साथ में मंगल भी हो तो मुनष्य धनवान् होता है।

(ii) धनेश यदि एकादश स्थान में हो या लाभेश धनस्थान में गया हो अथवा ये दोनों केन्द्र त्रिकोण में गए हों तो मनुष्य धनवान् होता है।

धनेशे केन्द्रराशिस्थे लाभेशे तत् त्रिकोणगे।
गुरुशुक्रयुते दृष्टे धनलाभं दिशेद् बुधः।।5।।

यदि धनेश, लग्न में हो तथा लाभेश, धनेश से 1.5.9 में हो, साथ में गुरु या शुक्र की दृष्टि हो तो धन लाभ होता रहता है.।

धनहानि योग :–

धनेशे रिपुभावस्थे लाभेशे तद्गते यदि।
वित्तलाभौ पापयुक्तौ दृष्टौ निर्धन एव सः।।6।।
धनलाभाधिपावस्तौ पापग्रहसमन्वितौ।
जन्मप्रभृतिदारिद्रयं भिक्षान्नं लभते नरः।।7।।
षष्ठाष्टमव्ययस्थौ चेद्धनलाभाधिपौ मुने!।
लाभे कुजे धने राहौ राजदण्डाद् धनक्षयः।।8।।

यदि धनेश षष्ठभाव में लाभेश के साथ स्थित हो और धन व लाभ भाव में पापग्रहों का योग या दृष्टि हो तो मनुष्य निर्धन होता है।

यदि धनेश व लाभेश 6.8.12 में स्थित हों तथा मंगल एकादश स्थान में व राहु द्वितीय स्थान में हो तो राजा के दण्ड के कारण धनहानि होती है।

धनव्यय का विचार :–

लाभे जीवे धने शुक्रे धनेशे शुभसंयुते ।

व्यये च शुभसंयुक्ते धर्मकार्ये धनव्ययः ।। 9 ।।

स्वभोच्चस्थे धनाधीशे गुरुदृष्टयुते जनः ।

परोपकारी ख्यातश्च विज्ञेयो जनपोषकः ।। 10 ।।

स्थिते पारावतांशादौ धनेशे शुभ संयुते ।

तद्गृहे सर्वसम्पत्तिर्विनाऽयासेन जायते ।। 11 ।।

यदि एकादश स्थान में बृहस्पति, धनस्थान में शुक्र तथा धनेश किसी शुभग्रह के साथ हो एवं व्यय भाव में शुभ ग्रह हो तो मनुष्य का धन अच्छे धार्मिक कार्यों में व्यय होता है।

यदि धनेश अपने परमोच्च (या उच्च) में हो तथा उसे बृहस्पति देखता हो तो मनुष्य परोपकारी, विख्यात व बहुत लोगों का पोषक होता है।

यदि धनेश शुभ ग्रह से युक्त होकर पारावतांश आदि में हो अर्थात् दशवर्ग बली हो तो उसके घर में सब सम्पत्तियाँ स्वयं ही चलकर आ जाती हैं।

नेत्र विचार :–

नेत्रेशे बलसंयुक्ते शोभनाक्षो भवेन्नरः ।

षष्ठाष्टमव्ययस्थे च नेत्रवैकल्यवान् भवेत् ।। 12 ।।

धनेशे पापसंयुक्ते धने पापसमन्विते ।

पिशुनोऽसत्यवादी च वातव्याधिसमन्वितः ।। 13 ।।

यदि द्वितीयेश व द्वादशेश बलवान् होकर शुभ भाव में स्थित हो तो मनुष्य सुन्दर नेत्रों वाला होता है।

यदि धनेश पापयुक्त हो तथा धनभाव में भी पाप ग्रह हो तो मनुष्य चुगलखोर, झूठा व वातरोगी होता है।

धनेशे शुक्रसंयुक्ते धने लग्नेऽथवा रवौ ।

सशुक्रे जातमात्रस्य नेत्रविद्रूपता भवेत् ।।14 ।।

तत्रेन्दुरवी स्यातां निशान्धो धनलग्नपौ ।

सूर्ययुक्तौ धने नूनं जात्यन्धो मानवो भवेत् ।। 15 ।।

दोषकृन्न च सर्वत्र स्वोच्चस्वर्क्षादिगो ग्रहः ।

षडादित्रयनाथैश्च सम्बन्धी दोषकृच्छुभः ।। 16 ।।

यदि द्वितीयेश शुक्र के साथ हो अथवा 1.2 भाव में सूर्य शुक्र हो तो मनुष्य की आँखों में विकार होता है ।

यदि द्वितीय स्थान में सूर्यचन्द्रमा स्थित हो तो मनुष्य निशान्ध अर्थात् रात में अन्धापन अनुभव करता है । यदि धनेश लग्नेश सूर्य के साथ हो तो मनुष्य जन्म से अन्धा होता है ।

उक्त दोषकारक ग्रह यदि स्वक्षेत्री या स्वोच्च में हो तो विशेष हानि नहीं करता । इसके विपरीत शुभ ग्रह (उक्तयोग कारक ग्रहों में से कोई) 6.7.8 भावेशों के साथ सम्बन्ध करे तो भी दोषकारक हो जाता है ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
धनभावफलाध्यायश्चतुर्दशः ।। 14 ।।

15

।। अथ तृतीयभावफलाध्यायः ।।

भ्रातृसुख योग :–

सहजे सौम्ययुग्दृष्टे भावाधीशसमन्विते ।

सभौमे भ्रातृभावेशे केन्द्रकोणे सुखं भवेत् ।। 1 ।।

सभौमो भ्रातृभावेशो भ्रातृभावं प्रपश्यति ।

भ्रातृक्षेत्रगतो वापि भ्रातृसौख्यं विनिर्दिशेत् ।। 2 ।।

यदि तृतीय भाव शुभ ग्रह से युक्त दृष्ट हो अथवा तृतीयेश तृतीय में हो अथवा तृतीयेश व मंगल केन्द्र व त्रिकोण में गए हों तो मनुष्य को इस भाव का सुख अर्थात् पराक्रम परिश्रम की सफलता एवं भाइयों का सुख होता है ।

यदि मंगल व तृतीयेश, तृतीय स्थान को देखते हों अथवा तृतीयेश तृतीय में हो तो भी भ्रातृसौख्य होता है ।

भ्रातृसुख हानि योग :–

पापयोगेन तौ पापक्षेत्रयोगेन वा पुनः ।
उत्पाद्य सहजान् सद्यो निहन्तारौ न संशयः । । 3 । ।
स्त्रीग्रहो भ्रातृभावेशः स्त्रीग्रहो भ्रातृभावगः ।
भगिनी स्यात्तथा भ्राता पुंगृहे पुंग्रहो यदि । । 4 । ।
मिश्रे मिश्रफलं वाच्यं बलाबलविनिर्णयात् ।
मृतौ कुजतृतीयेशौ सहोदरविनाशकौ । । 5 । ।

यदि तृतीयेश व मंगल दोनों ही पाप ग्रह की राशि में पाप ग्रह से युक्त हों तो जातक के बाद होने वाले सहोदरों को नष्ट कर देते हैं।

यदि तृतीय भाव में स्त्रीग्रह (चन्द्र, बुध, शुक्र) की राशि हो एवं स्त्री ग्रह तृतीय में हों तो बहनें होती हैं। यदि तृतीय में पुरुष ग्रह व पुरुष राशि हो तो भाई होते हैं।

यदि मिश्रित ग्रह व राशि तृतीय पर अपना प्रभाव रखें तो दोनों (भाई व बहन) का सुख होता है।

सोदरनाथभौमौ च नाशस्थानगतौ यदि ।
पापेक्षितौ पापयुक्तौ भ्रातृनाशकरौ मुने ! । । 6 । ।

यदि तृतीयेश व तृतीयकारक मंगल, अष्टम स्थान में पापग्रहों से युक्त व पाप दृष्ट होकर स्थित हो तो भाइयों का सुख नहीं होता है।

विविध भ्रातृसौख्ययोग :–

केन्द्रत्रिकोणगेवापिस्वोच्चमित्रस्ववर्गगे ।
कारके भावनाथे वा भ्रातृसौख्यं वदेद्बुधः । । 7 । ।
भ्रातृभे बुधसंयुक्ते तदीशे चन्द्रसंयुते ।
कारके मन्द संयुक्ते भगिन्येकाग्रतो भवेत् । । 8 । ।
पश्चात् सहोदरोऽप्येकस्तृतीयस्तु मृतो भवेत् ।

यदि तृतीयेश या मंगल में से कोई एक भी केन्द्र या त्रिकोण में हो, अथवा स्वोच्च, स्वमित्र या स्ववर्ग में गया हो तो भाइयों का सुख होता है।

यदि तृतीय में बुध, तृतीयेश के साथ चन्द्र तथा मंगल के साथ शनि हो तो जातक की एक बड़ी बहन व एक छोटा भाई होता है तथा उसके बाद एक भाई पैदा होकर मर जाता है।

कारके राहु संयुक्ते सहजेशे तु नीचगे ।। 9 ।।
पश्चात् सहोदराभावं पूर्वं तु तत्त्रयं भवेत् ।
भ्रातृस्थानाधिपे केन्द्रे कारके तत् त्रिकोणगे ।। 10 ।।
जीवेनसहिते चोच्चे ज्ञेया द्वादश सोदराः ।
तत्र ज्येष्ठद्वयं तद्वज्जातकाच्च तृतीयकम् ।। 11 ।।
सप्तमं नवमं चैव द्वादशं च मृतं भवेत् ।
शेषाः सहोदराःषड् वै भवेयुर्दीर्घजीवनाः ।। 12 ।।

यदि भ्रातृकारक मंगल राहु के साथ हो अथवा तृतीयेश नीच में गया हो तो जातक सबसे छोटा भाई होता है तथा उसके तीन बड़े भाई होते हैं ।

यदि तृतीयेश केन्द्र में हो, कारक (मंगल) उससे त्रिकोण में हो, अथवा इन दोनों में से कोई अपने उच्च में बृहस्पति के साथ हो तो बारह भाई होते हैं । जातक के दो भाई बड़े, तीसरा स्वयं जातक होता है । क्रमशः 7.9.12 क्रम पर उत्पन्न भाई मर जाते हैं तथा शेष छोटे छह भाई दीर्घजीवी होते हैं ।

व्ययेशेन युतो भौमो गुरुणा सहितोऽपि वा ।
भ्रातृभावे स्थिते चन्द्रे सप्तसंख्यास्तु सोदराः ।। 13 ।।
भ्रातृस्थाने शशियुते केवलं पुंग्रहेक्षिते ।
सहजा भ्रातरो ज्ञेयाः शुक्रयुक्तेक्षितेऽन्यथा ।। 14 ।।
अग्रे जातं रविर्हन्ति पृष्ठे जातं शनैश्चरः ।
अग्रजं पृष्ठजं हन्ति सहजस्थो धरासुतः ।। 15 ।।
एतेषां विप्र ! योगानां बलाबल विनिर्णयात् ।
भ्रातृणां भगिनीनां वा जातकस्य फलं वदेत् ।। 16 ।।

यदि द्वादशेश या बृहस्पति से युक्त मंगल हो तथा तृतीय स्थान में चन्द्रमा हो तो सात भाई होते हैं ।

यदि तृतीय स्थान में चन्द्रमा हो तथा केवल पुरुष ग्रहों से दृष्ट हो तो भाई होते हैं । यदि शुक्र से दृष्ट चन्द्रमा तृतीयस्थ हो तो भगिनियाँ होती हैं ।

तृतीयस्थ सूर्य से बड़े भाई को, शनि से छोटे भाई को तथा तृतीयस्थ (भावेश व उच्च राशि के बिना) मंगल हो तो अगले पिछले सहोदरों को नष्ट करता है ।

इन सब योगों में योगकारक ग्रहों के बलाबल का निर्णय करके भाई व बहनों का विचार करना चाहिए ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां.
तृतीयभावफलाध्यायः पंचदशः ।। 15 ।।

16

।। अथ सुखभावफलाध्यायः ।।

गृह सुख योग :–

सुखेशे सुखभावस्थे लग्नेशे तद्गतेऽपि वा ।
शुभदृष्टे च जातस्य पूर्णगृहसुखं वदेत् ।। 1 ।।
स्वगेहे स्वांशके स्वोच्चे सुखस्थानाधिपो यदि ।
भूमियान गृहादीनां सुखं वाद्यभवं तथा ।। 2 ।।
केन्द्रे कोणे चतुर्थेशे शुभदृग्योगसंयुते ।
समीचीनं गृहं जन्तोर्वैपरीत्येऽन्यथा फलम् ।। 3 ।।
भावेशात्क्षेत्रचिन्ता तु सुखचिन्ता बृहस्पतेः ।
दिव्य वाहन सौख्यानां चिन्ता शुक्रात् सदा मता ।। 4 ।।

यदि चतुर्थेश चतुर्थभाव में हो अथवा लग्नेश चतुर्थ में हो अथवा लग्नेश चतुर्थेश का स्थानपरिवर्तन हो एवं शुभ ग्रह की उन पर दृष्टि हो तो गृह, कोठी, आवास आदि का पूर्ण सुख होता है ।

यदि चतुर्थेश स्वगृही, स्वनवांश या स्वोच्च में हो तो भूमि, वाहन व घर का तथा संगीतादि साधनों का सुख मिलता है ।

यदि चतुर्थेश केन्द्र या त्रिकोण में हो एवं शुभ दृष्टि या योग युक्त हो तो मनुष्य को आरामदायक कार्यसाधक घर की प्राप्ति होती है । यदि चतुर्थेश विपरीत स्थिति में हो अर्थात् 6.8.12 आदि अनिष्ट भावों में गया हो तो घर नहीं होता है ।

घर, जमीन जायदाद की चिन्ता चतुर्थेश से, सुख की चिन्ता बृहस्पति से तथा उत्तम वाहन, सुख व आराम का विचार शुक्र से करना चाहिए ।

कर्माधिपेन संयुक्ते केन्द्रे कोणे गृहाधिपे ।
विचित्रसौधप्राकारैर्मण्डितं तद्गृहं भवेत् ।। 5 ।।
बन्धुस्थानेश्वरे सौम्ये शुभग्रहयुतेक्षिते ।
शशिजे लग्नसंयुक्ते बन्धुपूज्यो भवेन्नरः ।। 6 ।।

यदि चतुर्थेश व दशमेश साथ–साथ किसी केन्द्र या त्रिकोण में हों तो जातक का सुन्दर, बड़ा, महलनुमा, सुन्दर परकोटे से युक्त, सुसज्जित घर होता है ।

यदि चतुर्थेश शुभ ग्रह हो तथा किसी अन्य शुभ ग्रह से देखा जाता हो एवं लग्न में बुध हो तो मनुष्य अपने बन्धु–बान्धवों के, समुदाय में पूज्य होता है ।

माता का विचार :–

मातुः स्थाने शुभयुते तदीशे स्वोच्चराशिगे ।
कारके बलसंयुक्ते मातुर्दीर्घायुरादिशेत् ।। 7 ।।
सुखेशे केन्द्रभावस्थे तथा केन्द्रस्थिते भृगौ ।
शशिजे स्वोच्चराशिस्थे, मातुः पूर्ण सुखं भवेत् ।। 8 ।।

यदि चतुर्थेश अपनी उच्च राशि में हो तथा चतुर्थ में शुभ ग्रह स्थित हो, मातृकारक ग्रह (चन्द्र, शुक्र) बलवान् हो तो माता की दीर्घायु होती है ।

यदि चतुर्थेश केन्द्र स्थान में गया हो, शुक्र भी केन्द्र में हो तथा बुध अपने उच्च में हो तो माता का भरपूर सुख मिलता है ।

पशुधन लाभ योग :–

सुखे रवियुते मन्दे चन्द्रे भाग्यगते सति ।
लाभस्थानगतो भौमो गोमहिष्यादि लाभकृत् ।। 9 ।।

यदि चतुर्थ स्थान में शनि के साथ सूर्य स्थित हो तथा चन्द्रमा नवम में हो, एकादश स्थान में मंगल हो तो गाय भैंस आदि दुधारू पशुओं का लाभ होता है ।

गूँगापन होने का योग :–

चरगेहसमायुक्ते सुखे तद्राशिनायके ।
षष्ठे व्ययेस्थिते भौमे नरः प्राप्नोति मूकताम् ।। 10 ।।

यदि चतुर्थ स्थान में 1.4.7.10 राशि हो तथा चतुर्थेश षष्ठ में व मंगल 12 में हो तो मनुष्य मूक होता है ।

वाहन सुख विचार :–

लग्नस्थानाधिपे सौम्ये सुखेशे नीचराशिगे ।
कारके व्ययभावस्थे सुखेशे लाभसंगते ।। 11 ।।
द्वादशे वत्सरे प्राप्ते वाहनस्य सुखं वदेत् ।
वाहने सूर्यसंयुक्ते स्वोच्चे तद्भावनायके ।। 12 ।।
शुक्रेण संयुते वर्षे द्वात्रिंशे वाहनं भवेत् ।
कर्मेशेन युते बन्धुनाथे तुंगांशसंयुते ।।
द्विचत्वारिंशके वर्षे नरो वाहनभाग् भवेत् ।। 13 ।।

लग्न में शुभ ग्रह की राशि हो, चतुर्थेश नीच राशि में लाभस्थान में हो तथा चतुर्थभाव के कारक (चन्द्रमा, बुध) द्वादश में हों तो बारहवें वर्ष में ही वाहन का सुख मिल जाता है ।

यदि चतुर्थ में सूर्य हो, चतुर्थेश उच्चगत हो एवं शुक्र से युक्त हो तो बत्तीसवें वर्ष में वाहन सुख मिलता है ।

यदि चतुर्थेश व दशमेश किसी राशि में एक साथ हों तथा चतुर्थेश अपने उच्च नवांश में हो तो बयालीसवें वर्ष में वाहन मिलता है ।

लाभेशे सुखराशिस्थे सुखेशे लाभसंयुक्ते ।
द्वादशे वत्सरे प्राप्ते जातो वाहनभाग् भवेत् ।।
शुभं शुभत्वे भावस्य पापत्वे फलमन्यथा ।। 14 ।।

यदि एकादशेश चतुर्थ में व चतुर्थेश एकादश में हो तो बारहवें वर्ष में ही वाहन का सुख मिल जाता है ।

चतुर्थ भाव में शुभत्व अधिक हो तो घर, सम्पत्ति, वाहन, सुख उत्तम श्रेणी का तथा पापत्व अधिक हो तो उक्त बातों का अभाव या होते हुए भी ये वस्तुएँ कष्टकारक होती है ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
सुखभावफलाध्यायः षोडशः ।। 16 ।।

17

।। अथ पंचमभावफलाध्यायः ।।

लग्नपे सुतभावस्थे सुतपे च सुते स्थिते ।
केन्द्रत्रिकोण संस्थे वा पूर्ण पुत्रसुखं वदेत् ।। 1 ।।
षष्ठाष्टमव्ययस्थे तु सुताधीशे त्वपुत्रता ।
सुतेशेऽस्तंगते वापि पापाक्रान्ते च निर्बले ।। 2 ।।
तदा न जायते पुत्रो जातो वा म्रियते ध्रुवम् ।। 3 ।।

लग्नेश पंचम में हो अथवा पंचमेश भी वहीं हो यह एक योग है । अथवा पंचमेश केन्द्रत्रिकोण में गया हो तो पुत्र सुख होता है ।

यदि पंचमेश 6.8.12 भावों में हो तो पुत्र नहीं होता है । यदि पंचमेश अस्त हो, निर्बल या पापग्रहों से आक्रान्त हो तो पुत्र नहीं होता या पुत्र होकर भी जीवित नहीं रहता ।

काकबन्ध्यायोग :–

षष्ठस्थाने सुताधीशे लग्नेशे कुजसंयुते ।
म्रियते प्रथमापत्यं काकवन्ध्या च गेहिनी ।। 4 ।।
सुताधीशो हि नीचस्थो षडादिभाव संस्थितः ।
काकवन्ध्या भवेन्नारी सुते केतुबुधौ यदि ।। 5 ।।
सुतेशे नीचगो यत्र सुतस्थानं न पश्यति ।
तत्र सौरिबुधौ स्यातां काकवन्ध्यात्वमाप्नुयात् ।। 6 ।।

यदि पंचमेश षष्ठ स्थान में हो, लग्नेश किसी भी भाव में मंगल से युक्त हो तो जातक की पहली सन्तान मर जाती है तथा बाद में जातक पुरुष हो तो उसकी पत्नी तथा स्त्री हो तो स्वयं, आगे गर्भ धारण नहीं करती । जिसे एक बार ही जीवन में गर्भधारण हो वह काकबन्ध्या तथा कभी गर्भ न हो तो वन्ध्या होती है ।

यदि पंचमेश नीच स्थान में गया हो और 6.8.12 भाव में स्थित हो और पंचम में केतु बुध हो तो काकवन्ध्या योग होता है ।

पंचमेश नीच राशि में हो और पंचम को न देखे एवं पंचम भाव में बुध शनि हो तो काकवन्ध्या योग होता है।

कष्टपूर्वक पुत्र लाभ –

भाग्येशो मूर्तिवर्ती च सुतेशो नीचगो यदि।

सुते केतु बुधौ स्यातां सुतं कष्टाद् विनिर्दिशेत्।। 7।।

षष्ठाष्टमव्ययस्थो वा नीचो वा शत्रुराशिगः।

सुतेशः पंचमे वा स्यात् कष्टात्पुत्रं विनिर्दिशेत्।। 8।।

यदि नवमेश लग्न में हो और पंचमेश नीच में हो, साथ पंचम में केतु व बुध हो तो प्रयत्न (चिकिसा, मन्त्रौषधादि) करने से पुत्रलाभ होता है।

यदि पंचमेश 6.8.12 में हो अथवा पंचमेश नीचस्थ शत्रुक्षेत्री होकर पंचम में ही हो तो भी कष्टपूर्वक पुत्र होता है।

दत्तकादि पुत्र योग :–

पुत्रभावे बुधक्षेत्रे मन्दक्षेत्रेऽथवा पुनः।

मन्दे मान्दियुते दृष्टे तदादत्तादयः सुताः।। 9।।

पंचमे षडग्रहैर्युक्ते तदीशे व्ययराशिगे।

लग्नेशेनदू बलाढ्यौ चेत् तदा दत्तसुतोद्भवः।। 10।।

यदि पंचम भाव में मिथुन, कन्या, मकर, कुम्भ राशि में शनि व मान्दिं (गुलिक) की दृष्टि या योग हो तो जातक को दत्तक या कृत्रिम, स्वीकृत, पुत्र होता है, अपनी पत्नी से उत्पन्न पुत्र नहीं होता।

यदि पंचम भाव में छह ग्रह हों तथा पंचमेश व्यय भाव में स्थित हो, लग्नेश व चन्द्र बली हो तो जातक का गोद लिया पुत्र होता है।

प्रबल पुत्र योग :–

सुते ज्ञजीवशुक्राश्च सबलैरवलोकिते।

भवन्ति बहवः पुत्राः सुतेशेहि बलान्विते।। 11।।

यदि पंचम भाव में बुध, गुरु, शुक्र हो तथा बलवान् ग्रह (पुरुष ग्रह) से देखे जाते हों और पंचमेश भी बलवान् हो तो बहुत से पुत्र होते हैं।

पुत्री योग :–

सुतेशे चन्द्रसंयुक्ते तद्द्रेष्काणगतेऽपि वा।

तदा हि कन्यकोत्पत्तिः प्रवदेद् दैवचिन्तकः।। 12।।

यदि पंचमेश चन्द्रमा के साथ हो अथवा पंचमेश कर्क राशि के द्रेष्काण में हो तो दैवज्ञ को कन्याओं का जन्म कहना चाहिए ।

परजात पुत्र योग :-

सुतेशे चरराशिस्थे राहुणासहिते विधौ ।
पुत्रस्थानं गते मन्दे परजातं वदेच्छिशुम् ।।13 ।।

यदि पंचमेश चर राशि में हो, चन्द्रमा व राहु साथ हों, पंचम स्थान में शनि हो तो जातक का पुत्र परजात (अवैध पति द्वारा उत्पादित या कृत्रिम गर्भाधान) होता है, अर्थात् उसके वीर्य से पुत्र न होकर परवीर्योत्पन्न सन्तति होती है ।

यह जातक का परजात योग योग न होकर जातक के पुत्र के सन्दर्भ में पठित है । कहीं-कहीं पर 'सुतेशे नरराशिस्थे' भी पाठ है । तब पंचमेश पुरुष (विषम) राशि में समझा जाएगा ।

लग्नादष्टमगे चन्द्रे चन्द्रादष्टमगे गुरौ ।
पापग्रहयुतैर्दृष्टे परजातो न संशयः ।। 14 ।।

यदि लग्न से अष्टम में चन्द्रमा, चन्द्रमा से अष्टम में बृहस्पति हो तथा इन दोनों पर या एक पर पापग्रह की दृष्टि या योग हो तो जातक की स्ववीर्योत्पन्न सन्तान नहीं होती है ।

पुत्र जन्म से भाग्य वृद्धि :-

पुत्रस्थानाधिपे स्वोच्चे लग्नाद्वा द्वित्रिकोणगे ।
गुरुणासंयुते दृष्टे पुत्रभाग्यमुपैति सः ।। 15 ।।
त्रिचतुःपापसंयुक्ते सुते सौम्यविवर्जिते ।
सुतेशे नीचराशिस्थे नीचसंस्थो भवेच्छिशुः ।। 16 ।।

यदि पंचमेश अपने उच्च में हो (मूल त्रिकोण,स्वक्षेत्र में भी) अर्थात् राशि बली हो तथा लग्न से 1.2.5.9 में हो और गुरु से दृष्ट रहे तो पुत्र जन्म के बाद जातक का भाग्य चमकता है ।

यदि पंचम में कोई शुभ ग्रह न हो तथा तीन-चार पाप ग्रह पंचम में हों, पंचमेश नीच राशि में हो तो जातक का पुत्र नीच कर्म करने वाला होता है ।

समयबद्ध पुत्रप्राप्ति :–

पुत्रस्थानं गते जीवे तदीशे भृगुसंयुते ।
द्वात्रिंशे च त्रयस्त्रिंशे वत्सरे पुत्रसम्भवः ।। 17 ।।
सुतेशे केन्द्रभावस्थे कारकेण समन्विते ।
षट्त्रिंशे त्रिंशदाब्दे च पुत्रोत्पत्ति विनिर्दिशेत् ।। 18 ।।
लग्नाद् भाग्यगते जीवे जीवाद्भाग्यगते भृगौ ।
लग्नेशे भृगुयुक्ते वा चत्वारिंशे सुतं वदेत् ।। 19 ।।

पंचम भाव में गुरु हो और पंचमेश शुक्र के साथ हो तो 32वें या 33वें वर्ष में पुत्र जन्मता है ।

पंचमेश केन्द्र में पुत्रकारक (चरकारक या गुरु) के साथ हो तो 30 या 36वें वर्ष में पुत्रोत्पत्ति होती है ।

लग्न से नवम भाव में गुरु तथा गुरु से नवम भाव में शुक्र हो तथा लग्नेश शुक्र के साथ हो तो 40वें वर्ष में पुत्रोत्पत्ति होती है ।

इन योगों में हमने 2 से 5 वर्षो का अन्तर अनुभव में पाया है । अन्यथा योग समीचीन है ।

पुत्रवियोग योग :–

पुत्रस्थानं गते राहौ तदीशे पापसंयुते ।
नीचराशिगतो जीवो द्वात्रिंशे पुत्रमृत्युदः ।। 20 ।।
जीवात्पंचमगे पापे लग्नात्पंचमगेऽपि च ।
षट्त्रिंशे च-त्रयस्त्रिंशे चत्वारिंशे सुतक्षयः ।। 21 ।।
लग्ने मान्दिसमायुक्ते लग्नेशे नीचराशिगे ।
षट्पंचाशत्तमेऽब्दे च पुत्रशोकसमाकुलः ।। 22 ।।

यदि पंचम स्थान में राहु, पंचमेश के साथ पाप ग्रह तथा गुरु मकर राशि में हो तो बत्तीसवें वर्ष में पुत्रशोक होता है ।

बृहस्पति व लग्न से पंचम स्थान में एक साथ पाप ग्रह हों तो 33, 36 व 40वें वर्ष में कभी यथासम्भव पुत्रनाश होता है ।

लग्न में गुलिक हो तथा लग्नेश नीच राशि में हो तब 56वें वर्ष में पुत्रशोक होता है ।

इन योगों में पंचमेश व शुभ ग्रहों की दृष्टि या योग पंचम पर रहने से बचाव होता है ।

सन्तान संख्या योग :–

चतुर्थे पापसंयुक्ते षष्ठभावे तथैव च ।
सुतेशे परमोच्चस्थे लग्नेशेन समन्विते ।। 23 ।।
कारके शुभसंयुक्ते दशसंख्यास्तु सूनवः ।
परमोच्चगते जीवे धनेशे राहु संयुते ।। 24 ।।
भाग्येशे भाग्यसंयुक्ते संख्याता नवसूनवः ।
पुत्रभाग्यगते जीवे सुतेशे बलसंयुते ।। 25 ।।
धनेशे कर्मभावस्थे वसुसंख्यास्तु सूनवः ।

यदि चतुर्थ व षष्ठ में एक साथ पाप ग्रह हों और पंचमेश परमोच्चगत होकर लग्नेश के साथ हो एवं बृहस्पति शुभयुक्त हो तो दस पुत्र होते हैं ।

यदि गुरु परमोच्च में गया हो, द्वितीयेश राहु के साथ हो तथा नवमेश नवम में हो तो नौ पुत्र होते हैं ।

यदि बृहस्पति पंचम या नवम में हो, पंचमेश बली हो तथा द्वितीयेश दशम स्थान में गया हो तो आठ पुत्र होते हैं ।

पंचमात्पंचमे मन्दे सुतस्थे च तदीश्वरे ।। 26 ।।
सूनवः सप्तसंख्याश्च द्विगर्भे यमलौ वदेत् ।
वित्तेशे पंचमस्थाने सुतस्थे च सुताधिपे ।। 27 ।।
जायन्ते षट्सुतास्तस्य तेषां च त्रिप्रजामृतिः ।
मन्दात् पंचमगे जीवे जीवात्पंचमगे रवौ ।। 28 ।।
सूर्यात्पंचमगे पापे पुत्रमेकं विनिर्दिशेत् ।

यदि नवम भाव में शनि व पंचम में पंचमेश हो तो 7 पुत्र होते हैं तथा दो बार जुड़वाँ सन्तान भी होती है ।

द्वितीयेश पंचम में हो तथा पंचमेश भी पंचम में हो तो 6 पुत्र होते हैं, लेकिन तीन ही जीवित रह पाते हैं ।

शनि से पंचम में गुरु, गुरु से पंचम में सूर्य तथा सूर्य से पंचम में पाप ग्रह (मंगल, राहु) हो तो एक ही पुत्र होता है ।

पंचमे पापयुक्ते वा जीवात्पचंमगे शनौ ।। 29 ।।
पत्न्यन्तरे पुत्रलाभं कलत्रत्रयभाग् भवेत् ।
पंचमे पापसंयुक्ते जीवात्पंचमे शनौ ।। 30 ।।
लग्नेशे धनभावस्थे सुतेशो भौमसंयुतः ।
जातं जातं शिशुं हन्ति दीर्घायुश्च स्वयं भवेत् ।। 31 ।।

यदि पंचम में पाप ग्रह हो, गुरु से पंचम में शनि हो तो दूसरी या तीसरी पत्नी से पुत्र होता है।

पंचम में पाप ग्रह व गुरु से पंचम में शनि के साथ ही लग्नेश द्वितीय में हो व पंचमेश के साथ मंगल हो तो जातक की सन्तान पुत्रादि मर जाते हैं तथा स्वयं दीर्घायु होता है, अर्थात् सब बेटों के मरने के बाद मरता है।

इन योगों में देशकाल का विचार करके फल निर्देश करें। दस आदि पुत्रों को बहुत से पुत्र मानें तथा दूसरी–तीसरी पत्नी की बात यथावसर सम्भव होने पर ही कहें।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
पंचमभावफलाध्यायः सप्तदशः ।।17।।

18

।। अथ षष्ठभावफलाध्यायः ।।

व्रणादियोग :–

पापः षष्ठाधिपो गेहे लग्ने वाष्टमसंस्थिते
तदा व्रणो भवेद्देहे षष्ठराशिसमाश्रिते ।। 1 ।।
एवं पित्रादिभावेशास्तत्तत्कारकसंयुताः ।
व्रणाधिपयुताश्चापि षष्ठाष्टमयुता यदि ।। 2 ।।
तेषामपि व्रणं वाच्यमादित्येन शिरोव्रणम् ।
इन्दुना च मुखे कण्ठे भौमेन ज्ञेन नाभिषु ।। 3 ।।

यदि पापी षष्ठेश 1.6.8 में स्थित हो तो षष्ठभावगत में स्थित राशि से द्योतित अंग में व्रण समझना चाहिएं।

इस तरह षष्ठेश के साथ जिस सम्बन्धी का भावेश उक्त प्रकार से स्थित हो अर्थात् दशम से षष्ठेश यदि दशम में, उससे षष्ठ (तृतीय में) एवं उससे अष्टम अर्थात् पंचम में हो तो पिता को घाव होगा। इसी तरह पुत्र, माता, स्त्री, भ्राता आदि भावों से गणना करके षष्ठेश के आधार पर इन सम्बन्धियों के शरीर में व्रण स्थिति का निश्चय करना चाहिए।

यदि व्रण कारक (षष्ठेश) सूर्य हो तो सिर में, चन्द्रमा हो तो मुँह या गले में, मंगल व बुध हो तो पेट में घाव समझना चाहिए।

गुरुणा नासिकायां च भृगुणा नयने पदे।
शनिना राहुणा कुक्षौ केतुना च तथा भवेत्।।4।।
लग्नाधिपः कुजक्षेत्रे बुधभे यदि संस्थितः।
यत्र कुत्रस्थितो ज्ञेन वीक्षितो मुख रुक्प्रदः।।5।।

बृहस्पति यदि व्रणकारक हो तो नाक पर, शुक्र हो तो आँख पर, शनि हो तो पैरों में, राहु व केतु से कोख (पेट) पर घाव होता है।

यदि लग्नेश 1.8.3.6 राशियों में गया हो तथा कहीं भी स्थित होकर बुध से दृष्ट हो तो मुख रोग होता है।

कुष्ठरोग योग :–

लग्नाधिपौ कुजबुधौ चन्द्रेण यदि संयुतौ।
राहुणा शनिना सार्ध कुष्ठं तत्र विनिर्दिशेत्।।6।।
लग्नाधिपं विना लग्ने स्थितश्चेत्तमसाशशी।
श्वेतकुष्ठं तदा कृष्णकुष्ठं च शनिना सह।।7।।
कुजेन रक्तकुष्ठं स्यात् तत्तदेवं विचिन्तेयत्।

यदि मंगल या बुध की राशि लग्न में हो अर्थात् 1.8.3.6. लग्न में जन्म हो तथा लग्नेश चन्द्रमा के साथ हो, इनके साथ राहु शनि भी हों तो कुष्ठरोग होता है।

कर्क लग्न के अतिरिक्त किसी लग्न में जन्म हो तथा चन्द्रमा राहु के साथ लग्न में हो तो श्वेत कुष्ठ (सफेद दाग) होता है। इसी तरह चन्द्रमा शनि के साथ लग्न में हो (लेकिन लग्नेश न हो) तो कृष्ण कुष्ठ होता है। मंगल व चन्द्र से उक्त योग बनता हो तो रक्त कुष्ठ होता है।

प्राचीन शुकसूत्रों में इन योगों को सामान्य हेरफेर के साथ कहा है। तदनुसार लग्नेश, बुध, मंगल व चन्द्रमा ये चारों किसी भी लग्न में राहु युक्त हों तो कुष्ठयोग है। सूर्य साथ हो तो रक्त कुष्ठ तथा शनि साथ हो तो कृष्ण कुष्ठ होता है। (देखें जातकालंकार, शुकसूत्र 3.6 पृ० 87) कुष्ठ से तात्पर्य सदैव गलित कुष्ठ न होकर त्वचाविकार है।

गण्डादिरोग योग :–

लग्ने षष्ठाष्टमाधीशौ रविणा यदि संयुतौ।।8।।
ज्वरगण्डः कुजे ग्रन्थिः शस्त्र व्रणमथापि वा।
बुधेन पित्तं गुरुणा रोगाभावं विनिर्दिशेत्।।9।।

स्त्रीभिः शुक्रेण शनिना वायुना संयुतो यदि ।

गण्डश्चाण्डालतो नाभौ तमः केतुयुते भयम् ।। 10 ।।

यदि लग्न में षष्ठेश व अष्टमेश सूर्य के साथ हो तो जातक को बार-बार ज्वर होता है । यदि मंगल के साथ हो तो गाँठ या शस्त्र की चोट का घाव होता है ।

यदि 6.8 भावेश लग्न में बुध के साथ हो तो पित्त रोग, गुरु के साथ हो तो रोग का अभाव होता है । अथवा पाठान्तर से आँव या दस्त आदि होते हैं ।

यदि 6.8 भावेश लग्न में शुक्र के साथ हो तो स्त्री सम्पर्क के रोग, शनि हो तो वायु (वात या गैस) रोग या नाभि में फोड़ा होता है । केतु साथ हो तो भय होता है ।

गण्ड शब्द का तात्पर्य रोग, गिल्टी या फोड़ा दोनों है । शारीरिक व मानसिक रोग का आघात गण्ड द्वारा संगृहीत है । शुक सूत्रों में लग्नेश के साथ 6.8 भावेश तथा उक्त प्रकार से मंगलादि ग्रह होने पर ये रोग कहे हैं । अन्तर यह है कि शुक मुनि लग्नेश-मंगल-सूर्यादि ग्रहों का योग 6.8.12 में होने पर रोग मानते हैं जबकि पराशर ने यहाँ लग्न में 6.8 भावेशों के साथ रहने पर योग कहा है । 1.6.8 भावों भावेशों का क्रूर सम्बन्ध रोग का जनक है । व्युत्पत्ति के लिए हमारा जातकालंकार शुकसूत्र देखें । शुकसूत्रों में भी रोग विवेचन का यही क्रम है, यह विशेष ध्यातव्य है ।

चन्द्रेण गण्डः सलिलैः कफश्लेष्मादिना भवेत् ।

एवं पित्रादिभावानां तत्तत्कारकयोगतः ।। 11 ।।

गण्डं तेषां वदेदेवमूह्यमत्र मनीषिभिः ।।

यदि 6.8 भावेश लग्न में चन्द्र के साथ हो तो जलरोग, कफ विकार आदि होते हैं । इसी पद्धति से पिता, माता आदि भावों से 6.8 भावेशों का विचार कर उन सम्बन्धियों को भी रोग की सम्भावना कहें ।

चन्द्रेण जलगण्डः । भौमेन ग्रन्थिशस्त्रव्रणः । बुधेन पित्तम् । गुरुणा आमरोग । शनिना चाण्डाल चौराभ्यां गण्डः । राहुकेतुभ्यामपियोज्यम् । (शुकसूत्र जातकालंकार) ।

आप भाषा व भाव की समानता देखकर स्वयं प्रामाणिकता का निश्चय कर लें । शुकसूत्रकार भी पितादि भावों से रोगविचार इसी पद्धति से करने का निर्देश देते हैं ।

एवं पितृमातृभ्रातृकलत्रपुत्राणां तत्तत्कारकभावस्थान योगेन सर्व वाच्यम् । (शुकसूत्र) ।

रोगोत्पत्ति का समय :–

रोगस्थानगते पापे तदीशे पापसंयुते ।। 12 ।।
राहुणासंयुते मन्दे सर्वदा रोगसंयुतः ।।
रोगस्थानगते भौमे तदीशे रन्ध्रसंयुते ।। 13 ।।
षड्वर्षे द्वादशे वर्षे ज्वररोगी भवेन्नरः ।
षष्ठस्थानगते जीवे तद्गृहे चन्द्रसंयुते
द्वाविंशैकोनविंशेऽब्दे कुष्ठरोगं विनिदिर्शेत् ।

यदि षष्ठभाव व षष्ठेश दोनों ही पापयुक्त हों और शनि राहु साथ साथ हों तो जातक सदैव रोगी रहता है ।

यदि षष्ठस्थान में मंगल हो तथा षष्ठेश अष्टम में गया हो तो 6 या 12 वर्ष में ज्वर रोग होता है ।

षष्ठस्थान में बृहस्पति हो तथा चन्द्रमा धनु या मीन में हो तो उन्नीसवें या बाईसवें वर्ष में कुष्ठ रोगोत्पत्ति होती है ।

रोगस्थानं गतो राहुः केन्द्रे मान्दिसमन्विते ।। 15 ।।
लग्नेशे नाशराशिस्थे षड्विंशे क्षयरोगता ।
व्ययेशे रोगराशिस्थे तदीशे व्ययराशिगे ।। 16 ।।
त्रिंशद्वर्षैकोन वर्षो गुल्मरोगं विनिर्दिशेत् ।
रिपुस्थानगते चन्द्रे शनिना संयुते यदि ।। 17 ।।
पंचपंचाशदब्देषु रक्तकुष्ठं विनिर्दिशेत् ।

यदि षष्ठ स्थान में राहु व केन्द्र में गुलिक हो और लग्नेश अष्टम में गया हो तो छब्बीसवें वर्ष में क्षयरोग होता है ।

यदि द्वादशेश षष्ठ में व षष्ठेश द्वादश में हो तो तीस वर्ष या 29वें वर्ष में गुल्म रोग (फोड़ा ट्यूमर आदि) होता है ।

षष्ठस्थान में चन्द्रमा शनि के साथ हो तो 55वें वर्ष में रक्त कुष्ठ होने की सम्भावना होती है ।

लग्नेशे लग्नराशिस्थे मन्दे शत्रुसमन्विते ।। 18 ।।
एकोनषष्ठिवर्षे तु वातरोगार्दितो भवेत् ।
रन्ध्रेशे रिपु राशिस्थे व्ययेशे लग्नसंस्थिते ।। 19 ।।
चन्द्रे षष्ठेशसंयुक्ते वसुवर्षे मृगादभयम् ।
षष्ठाष्टमगतो राहुस्तस्मादष्टमगे शनौ ।। 20 ।।

जातस्य जन्मतो विप्र ! प्रथमे च द्वितीयके ।
वत्सरेऽग्निभयं तस्य त्रिवर्षे पक्षिदोषभाक् । । 21 । ।

यदि लग्नेश लग्न में व षष्ठ में शनि हो तो 59वें वर्ष में वातरोग होता है । यदि अष्टमेश षष्ठस्थान में हो, व्ययेश लग्न में स्थित हो तथा चन्द्रमा षष्ठेश से युक्त हो तो आठवें वर्ष में पशु से भय होता है ।

6.8.12 में राहु तथा राहु से अष्टम में शनि हो तो बालक को पहले व दूसरे वर्ष में अग्नि भय तथा तीसरे वर्ष में पक्षियों से पीड़ा होती है ।

षष्ठाष्टमगते सूर्ये तद्व्यये चन्द्रसंयुते ।
पंचमे नवमेऽब्दे तु जलभीतिं विनिर्दिशेत् । । 22 । ।
अष्टमे मन्दसंयुक्ते तस्माद् द्वादशे कुजः ।
त्रिंशाब्दे दशमेऽब्दे तु स्फोटकादि विनिर्दिशेत् । । 23 । ।
रन्ध्रेशे राहुसंयुक्ते तदंशे रन्ध्रकोणगे ।
द्वाविंशेऽष्टादशे वर्षे ग्रन्थिमेहादिपीडनम् । । 24 । ।

6.8.12 में सूर्य हो तथा सूर्य से द्वादश स्थान में चन्द्र हो तो 5 या 9 वर्ष में जल से भय होता है ।

अष्टम स्थान में शनि हो और सप्तम में मंगल तो 10वें या 30वें वर्ष में फोड़े–फुंसी होते हैं ।

अष्टमेश राहु के साथ अपने नवांश में स्थित होकर अष्टम से 5.9 भाव में बैठा हो तो 18वें या 22वें वर्ष में बड़ा फोड़ा, मधुमेह या प्रमेह रोग से पीड़ा होती है ।

शत्रु विचार :–

लाभेशे रिपुभावस्थे रोगेशे लाभराशिगे ।
एकत्रिंशत्तमे वर्षे शत्रुमूलाद्धनव्ययः । । 25 । ।
सुतेशे रिपुभावस्थे षष्ठेशे गुरुसंयुते ।
व्ययेशे लग्नभावस्थे तस्य पुत्रो रिपुर्भवेत् । । 26 । ।
लग्नेशे षष्ठराशिस्थे तदीशे षष्ठराशिगे ।
दशमैकोनविंशेऽब्दे शुनकाद् भीतिरुच्यते । । 27 । ।

यदि एकादशेश षष्ठभाव में हो तथा षष्ठेश एकादश में हो तो 31वें वर्ष में शत्रुओं के कारण धन व्यय होता है ।

यदि पंचमेश षष्ठभाव में हो व षष्ठेश गुरु के साथ, हो, व्ययेश लग्न में गया हो तो जातक का पुत्र ही उसका शत्रु हो जाता है।

लग्नेश षष्ठराशि में व षष्ठेश षष्ठ में ही हो तो 10वें व 19वें वर्ष में कुत्ते से कष्ट होता है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
षष्ठभावफलाध्यायोऽष्टादशः ।।**18**।।

19

।। अथ सप्तमभावफलाध्यायः ।।

अल्पस्त्रीसुख योग :–

कलत्रपो विना स्वर्क्षं व्ययषष्ठाष्टमस्थितः ।
रोगिणीं कुरुते नारीं तथा तुंगादिकं विना ।। 1 ।।
सप्तमे तु स्थिते शुक्रेऽतीव कामी भवेन्नरः ।
यत्र-कुत्रस्थिते पापयुते स्त्रीमरणं भवेत् ।। 2 ।।

यदि सप्तमेश स्वगृही स्वोच्च को छोड़कर अन्य राशि में 6.8.12 में हो तो पत्नी सदैव रोगिणी रहती है। अथवा पत्नी सुख कम होता है।

सप्तम भाव में यदि शुक्र हो तो मनुष्य अति कामुक होता है। यदि शुक्र कहीं भी पापयुक्त दृष्ट होकर बैठे तो स्त्री की मृत्यु होती है।

स्त्री सुख योग :–

जायाधिपः स्वभेस्वोच्चे स्त्रीसुखं पूर्णमादिशेत् ।
जायाधीशः शुभैर्युक्तो दृष्टो वा बलसंयुतः ।। 3 ।।
तदा सौभाग्यशीलः स्यात् धनी मानी नरः प्रभुः ।
नीचे शत्रुग्रहेऽस्ते वा निर्बले वा कलत्रपे ।। 4 ।।
तस्यापि रोगिणी भार्या बहुभार्यो नरो भवेत् ।
मन्दभे शुक्रगेहे वा जायाधीशे शुभेक्षिते ।। 5 ।।
स्वोच्चगे तु विशेषेण बहुभार्यो भवेन्नरः ।

यदि सप्तमेश स्वराशि या सवोच्च में हो तो स्त्री सुख पूर्ण होता है। सप्तमेश यदि बलवान् हो और शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तब भी मनुष्य पत्नी सुख से सम्पन्न, समर्थ, धनी व सम्मानित होता है।

यदि सप्तमेश नीच राशि में या शत्रुराशि में, सप्तम भाव में किसी प्रकार से निर्बल हो तो उसकी पत्नी रोगिणी होती है तथा उसकी कई स्त्रियाँ होती हैं।

यदि सप्तमेश मकर, कुम्भ, वृष, तुला राशि में शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो मनुष्य की कई स्त्रियाँ होती हैं। यदि सप्तमेश स्वोच्च में हो तो विशेष तथा उक्त फल होता है।

बहुस्त्री से तात्पर्य जहाँ सम्भव हो वहाँ पत्नियां एवं जहाँ सम्भव न हो तो स्त्री सम्बन्ध समझना चाहिए। बहुविवाह विधिसम्मत न होते हुए भी बहुस्त्री सम्बन्ध समाज में देखा ही जाता रहा है। आगे के श्लोक में इसीलिए विविध प्रकार की स्त्रियों से सम्बन्ध बताया जा रहा है।

सम्बन्धित स्त्री का स्वरूप –

बन्ध्यासंगो मदे भानौ चन्द्रेराशिसमस्त्रियः ।। 6 ।।
कुजे रजस्वला संगो, बन्ध्यासंगश्च कीर्तितः ।
बुधे वेश्या च हीना च वणिक्स्त्री वा प्रकीर्तिता ।। 7 ।।
गुरौ ब्राह्मणभार्या स्यात् गर्भिणीसंग एव च ।
हीना च पुष्पिणी वाच्या मन्दराहुफणीश्वरैः ।। 8 ।।

यदि पूर्वोक्त बहुभार्या योग बनाने वाला ग्रह अर्थात् सप्तमेश होकर सप्तम में या क्वचित् नीचादि दोष युक्त हो या शनि शुक्र की राशि में हो। ऐसा ग्रह सूर्य हो तो वन्ध्या स्त्री से, चन्द्रमा हो तो जैसी राशि हो वैसी ही स्त्री से सम्पर्क होता है। अर्थात् समराशि हो तो कोमलांगी, विषमराशि हो तो कठोर आकृति स्वभाव वाली, ब्राह्मण, क्षत्रियादि राशि वर्ग से तत्तत् वर्ण की स्त्री होगी।

मंगल योग कारक हो तो रजस्वला स्त्री के साथ या बाँझ के साथ, बुध हो तो वेश्या, हीन बाजारू स्त्री या व्यापारी की स्त्री से सम्पर्क होता है।

ये यदा-कदा संयोगवशात् होने वाले स्त्री–सम्पर्क के योग हैं। स्त्री लाभ प्रश्न, विवाह प्रश्न, आदि में इनका प्रयोग हो सकता है।

कुजेऽथ सुस्तनी मन्दे व्याधिदौर्बल्य संयुता ।।
कठिनोर्ध्व कुचार्ये च शुक्रे स्थूलोत्तम स्तनी ।।9 ।।

पुनश्च सप्तम में मंगल हो तो सुन्दर स्तनों वाली, शनि हो तो बीमार कमजोर स्त्री, गुरु हो तो कठोर ऊँचे स्तनों वाली, शुक्र हो तो सुन्दर रमणीय उत्तम स्तनों वाली स्त्री मिलती है।

यह योग व्यभिचार के अतिरिक्त सामान्यतः पत्नी स्वरूप के लिए कहा है।

पत्नी वशीभूत योग :–

पापे द्वादशकामस्थे क्षीणचन्द्रस्तु पंचमे ।
जातश्च भार्यावश्यः स्यादिति जाति विरोधकृत् ।। 10 ।।

यदि 7.12 भाव में पापग्रह हो तथा पंचम में क्षीण चन्द्रमा रहे तो जातक अपनी पत्नी के वश में रहने वाला होता है तथा पत्नी के वश में रहने के कारण ही अपने बन्धु–बान्धवों से भी विरोध कर बैठता है।

व्यभिचारिणी स्त्री योग :–

जामित्रे मन्दभौमे च तदीशे मन्दभूमिजे ।
वेश्या वा जारिणी वापि तस्य भार्या न संशयः ।। 11 ।।
मन्दांशकगते शुक्रे मन्दक्षेत्रेगतेऽपि वा ।
मन्दयुक्ते च दृष्टे च शिश्नचुम्बनतत्परः ।। 12 ।।
भौमांशकगते शुक्रे भौमक्षेत्रगतेऽथवा ।
भौमयुक्ते च दृष्टे वा भगचुम्बनभाक् भवेत् ।। 13 ।।

यदि सप्तम स्थान में शनि या मंगल हों तथा वे ही सप्तमेश हों तो मनुष्य की पत्नी वेश्या या परपुरुषगामिनी होती है।

यदि शनि के नवांश व शनि की राशि में शुक्र हो तथा उसे शनि देखता हो तो मनुष्य समलैंगिक तथा दूसरे के लिंग को चूमने वाला होता है।

यदि मंगल के नवांश या राशि में शुक्र मंगल से युक्त दृष्ट हो तो पुरुष स्त्री की योनि को चूमने के लिए तैयार होता है।

सच्चरित्र स्त्री योग :–

दारेशे स्वोच्चराशिस्थे मदे शुभसमन्विते ।
लग्नेशे बलसंयुक्ते कलत्रस्थानसंयुते ।। 14 ।।

तद्भार्यासद्गुणोपेता पुत्रपौत्रविवर्धिनी ।

यदि सप्तमेश अपने उच्च में हो या सप्तम में शुभ ग्रह हो तथा लग्नेश बलवान् होकर सप्तम में हो तो उसकी पत्नी सद्गुणों वाली तथा खूब सन्तति द्वारा कुलवर्धिनी होती है ।

स्त्री–हानि योग :–

कलत्रे तत्पतौ वापि पापग्रहसमन्विते ।। 15 ।।

भार्याहानिं वदेत्तस्य निर्बले च विशेषतः ।

षष्ठाष्टमव्ययस्थाने मंदेशो दुर्बलो यदि ।। 16 ।।

नीचराशिगतो वापि दारनाशं विनिर्दिशेत् ।

कलत्रस्थानगे चन्द्रे तदीशे व्ययराशिगे ।। 17 ।।

कारको बलहीनश्च दारसौख्यं न विद्यते ।। 18 ।।

यदि सप्तम भाव या सप्तमेश पाप ग्रह से युक्त हो तथा स्वयं निर्बल भी हो तो विशेषतया स्त्री की हानि होती है ।

यदि निर्बल सप्तमेश 6.8.12 में हो या सप्तमेश नीचस्थ हो तो स्त्री का नाश होता है ।

यदि सप्तम स्थान में चन्द्रमा हो और सप्तमेश द्वादश में हो और गुरु या स्त्रीकारक निर्बल हो तो स्त्री का सुख नहीं मिलता है ।

तृतीय योग में द्वादश भाव से 6.8 भावों को भी लिया जा सकता है । स्त्री-सुखरहित योग के साथ में संयास या वैराग्य योगों का भी समन्वय कर लेना चाहिए ।

पत्नी संख्या विचार –

सप्तमेशे स्वनीचस्थे पापर्क्षे पापसंयुते ।। 19 ।।

सप्तमे क्लीबराश्यंशे द्विभार्यो जातको भवेत् ।

कलत्रस्थानगे भौमे शुक्रे जामित्रगे शनौ ।। 20 ।।

लग्नेशे रन्ध्रराशिस्थे कलत्रत्रयवान् भवेत् ।

द्विस्वभावगते शुक्रे स्वोच्चे तद्राशिनायके ।

दारेशे बलसंयुक्ते बहुदारसमन्वितः ।। 21 ।।

यदि सप्तमेश अपनी नीच राशि में हो या पाप ग्रह की राशि में पापयुक्त हो, सप्तम स्थान में नपुसंक राशि का नवांश हो तो जातक की दो पत्नियाँ होती हैं । बुध शनि की राशियाँ नपुंसक कही जाती हैं ।

सप्तम स्थान में मंगल या शुक्र या दोनों के साथ शनि हो और लग्नेश अष्टम में हो तो तीन स्त्रियाँ होती हैं।

यदि शुक्र द्विस्वभावराशि में हो, शुक्र की अधिष्ठितराशि का स्वामी अपने उच्च में हो, सप्तमेश बली हो तो अनेक पत्नियाँ होती हैं।

(i)

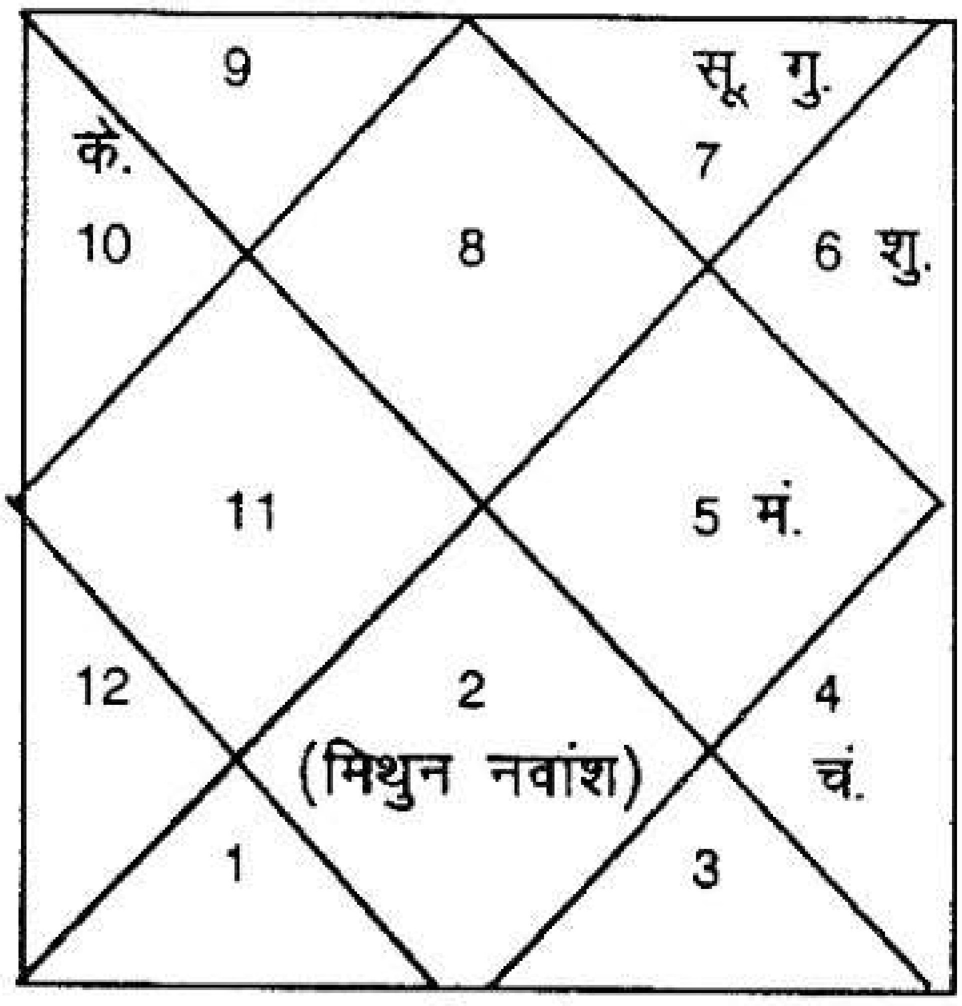

(ii)

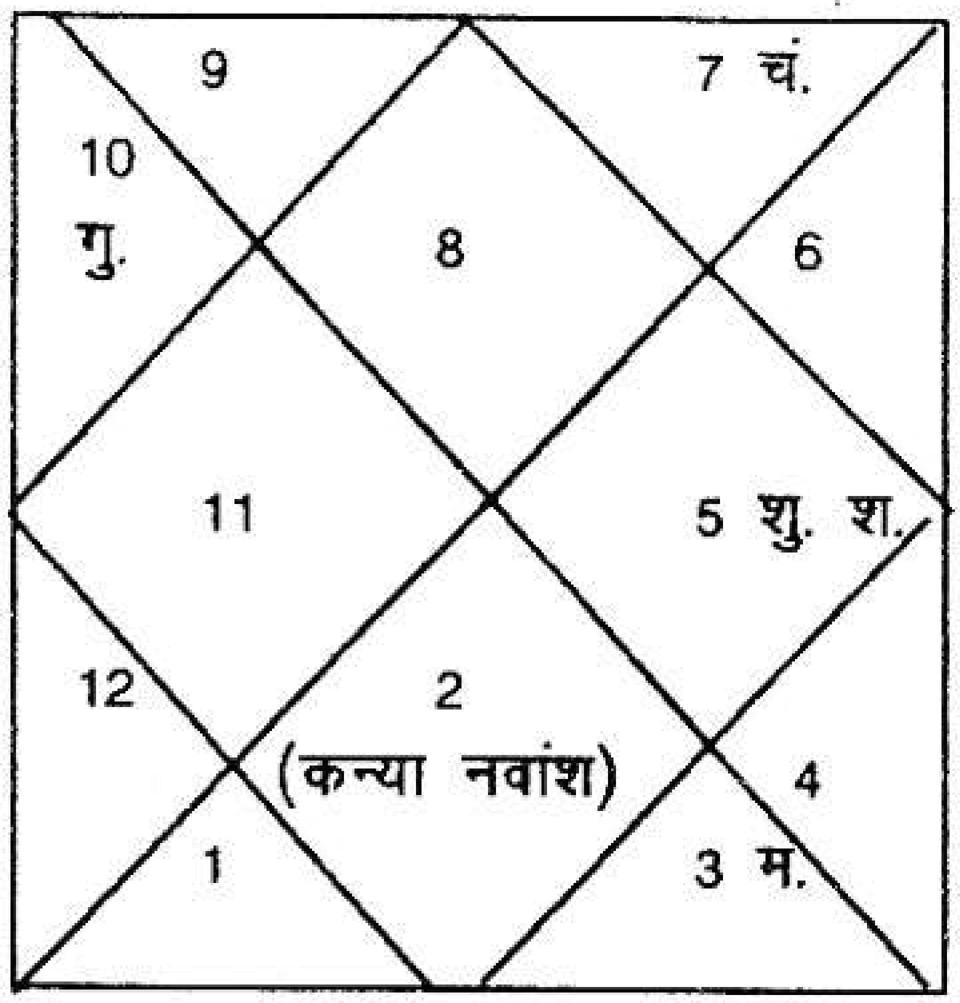

कुण्डली सं० (i) अनेक ग्रन्थों के रचयिता लेखक की है। इनके दो विवाह हुए थे। सप्तमेश नीचगत व सप्तम में नपुंसक नवांश है। दूसरी कुण्डली एक अध्यापक की है। इसमें शुक्र सप्तमेश होकर पापराशि में पापयुक्त है तथा सप्तम में कन्या नवांश नपुंसक है। इनके भी दो विवाह हो चुके हैं।

विवाह समय विचार :–

दारेशे शुभराशिस्थे स्वोच्चस्वर्क्षगतो भृगुः।
पंचमे नवमेऽब्दे तु विवाहः प्रायशो भवेत्।। 22।।
दारस्थानं गते सूर्ये तदीशे भृगुसंयुते।
सप्तमैकादशे वर्षे विवाहः प्रायशो भवेत्।। 23।।
कुटुम्ब स्थानगे शुक्रे दारेशे लाभराशिगे।
दशमे षोडशाब्दे च विवाहः प्रायशो भवेत्।। 24।।
लग्नकेन्द्रगते शुक्रे लग्नेशे मन्दराशिगे।
वर्षैकादशे प्राप्ते विवाहं लभते नरः।। 25।।

(i) यदि सप्तमेश शुभग्रह की राशि में हो और शुक्र स्वोच्च या स्वराशि मे हो तो पांचवें या नवें वर्ष में प्रायः विवाह हो जाता है।

(ii) यदि सप्तम स्थान में सूर्य हो तथा सप्तमेश शुक्र के साथ हो तो 7 या 11 वर्ष के आसपास विवाह होता है।

(iii) शुक्र यदि द्वितीय स्थान में हो व सप्तमेश एकादश स्थान में गया हो तो 10 या 16 वर्ष में विवाह होता है।

(iv) शुक्र केन्द्र में हो तथा लग्नेश मकर या कुम्भ में हो तो 11 वर्ष में विवाह होता है।

लग्नात्केन्द्रगते शुक्रे तस्मात्कामगते शनौ ।
द्वादशैकोनविंशे च विवाहः प्रायशो भवेत् ।। 26 ।।
चन्द्राज्जामित्रगेशुक्रेशुक्राज्जामित्रगेशनौ ।
वत्सरेऽष्टादशे प्राप्ते विवाहं लभते नरः ।। 27 ।।
धनेशे लाभराशिस्थे लग्नेशे कर्मराशिगे ।
अब्दे पंचदशे प्राप्ते विवाहं लभते नरः ।। 28 ।।
धनेशे लाभराशिस्थे लाभेशे धनराशिगे ।
अब्दे त्रयोदशे प्राप्ते विवाहं लभते नरः ।। 29 ।।

(i) लग्न से केन्द्र में शुक्र, शुक्र से सप्तम में शनि हो तो 12 या 19 वर्ष में विवाह होता है।

(ii) चन्द्र कुण्डली में सप्तम में शुक्र हो तथा शुक्र से सप्तम में शनि हो अर्थात् चन्द्रमा व शनि साथ हों और इनसे सप्तम में शुक्र हो तो 18 वर्ष में विवाह होता है।

(iii) द्वितीयेश एकादश में गया हो, लग्नेश दशम स्थान में हो तो 15वें वर्ष में विवाह होता है।

(iv) यदि धनेश लाभ में व लाभेश धन में हो तो 13 वर्ष में विवाह होता है।

रन्ध्राज्जामित्रगे शुक्रे तदीशे भौमसंयुते ।
द्वाविंशे सप्तविंशेब्दे विवाहं लभते नरः ।। 30 ।।
दारांशकगते लग्ननाथे दारेश्वरे व्यये ।
त्रयोविंशे च षड्विंशे विवाहं लभते नरः ।। 31 ।।
रन्ध्रेशे दारराशिस्थे लग्नांशभृगुसंयुते ।
पंचविंशे त्रयस्त्रिंशे विवाहं लभते नरः ।। 32 ।।

(i) यदि शुक्र द्वितीय स्थान ने हो, द्वितीयेश मंगल के साथ हो तो 22 या 27 वर्ष में विवाह होता है।

(ii) लग्नेश यदि सप्तमेश के नवांश में हो एवं सप्तमेश व्यय में गया हो तो 23 या 26 वर्ष में विवाह होता है।

(iii) यदि अष्टमेश सप्तम में स्थित हो तथा शुक्र लग्ननवांश राशि में हो तो 25 या 23 वर्ष में विवाह होता है।

भाग्याद्भाग्यगते शुक्रे तद्व्रये राहुसंयुते।

एकत्रिंशात्त्रयस्त्रिंशे दारलाभं विनिर्दिशेत्।। 33।।

भाग्याज्जामित्रमे शुक्रे तद्द्यूने दारनायके।

त्रिंशे वा सप्तविंशाब्दे विवाहं लभते नरः।। 34।।

(i) यदि नवम (लग्न से पंचम) में शुक्र हो तथा राहु 5.9 में कहीं हो तो 31 से 33 वर्ष के बीच विवाह सम्पन्न होता है।

(ii) भाग्य से सप्तम अर्थात् तृतीय भाव में शुक्र हो तथा नवम में सप्तमेश हो तो 30 या 27 वर्ष में विवाह होता है।

विवाह के जो वर्ष बताए गए हैं, ये कितने प्रामाणिक हैं? आज के युग में इनका समन्वय करना ही होगा। 18 वर्ष से नीचे विवाह अपराध होते हुए भी बाल विवाह कुछ प्रान्तों व जातियों में हो ही रहे हैं।

हमारे पीछे चले आ रहे क्रमिक कर्क लग्न वाले उदाहरण में श्लोक सं० 30 का योग कुछ घटित होता है। अष्टम से तृतीय में शुक्र न होकर अष्टम में है, अष्टमेश शनि मंगल से युक्त भी है। जातक का विवाह 23वें वर्ष में हुआ था। श्लोकोक्त दोनों भावों (रन्ध्रजामित्र) को ले लें तो योग पूरा है। ध्यातव्य है कि विवाह निश्चित 22 वें वर्ष में ही हो गया था।

(क) (ख)

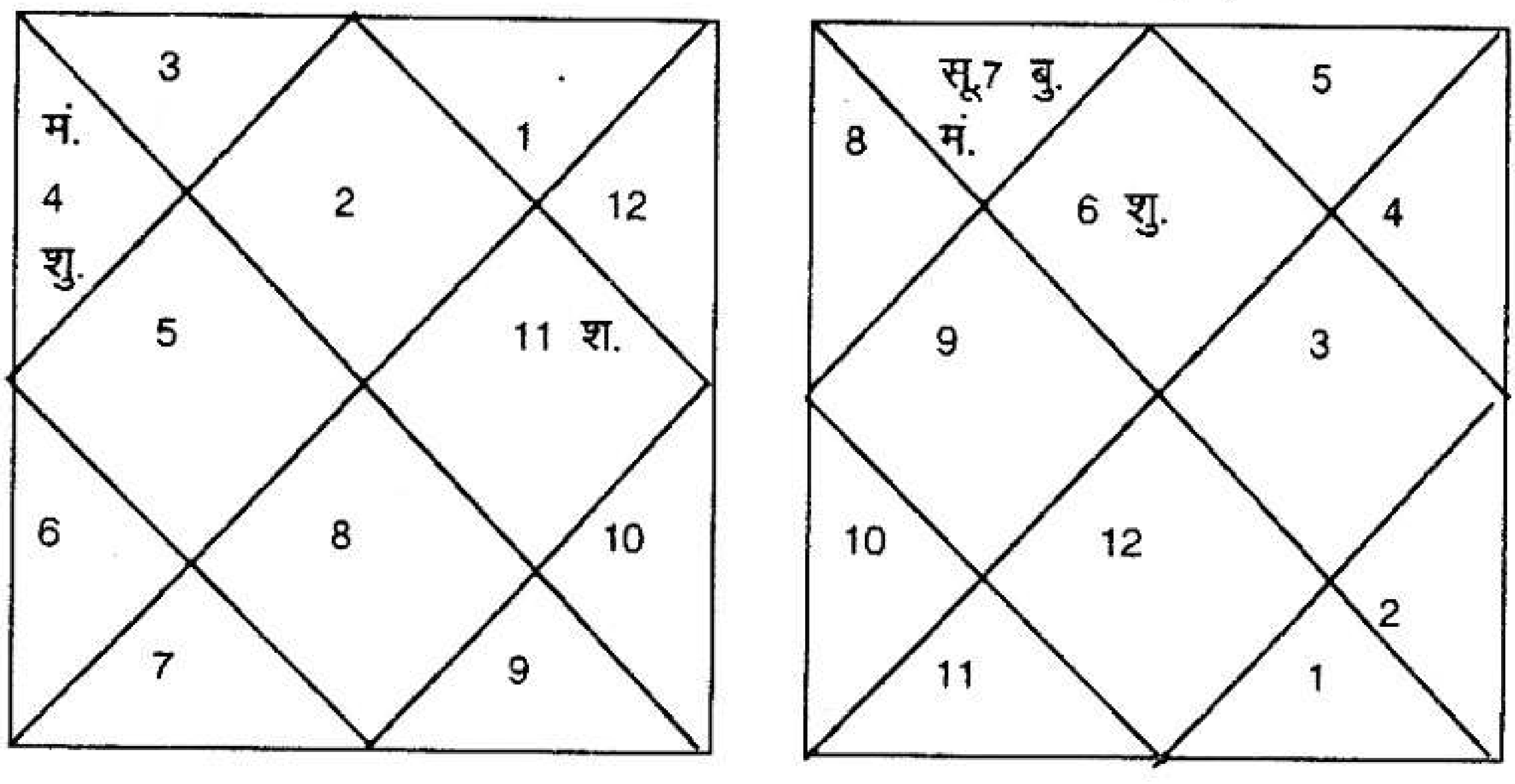

(क) नवम से सप्तम में शुक्र है। श्लोक 34 के अनुसार नवम में मंगल (सप्तमेश) होता, लेकिन यहाँ शुक्र के साथ ही है। इनका विवाह 26वें वर्ष में हुआ। 'तद्द्यूने' शब्द से यदि तत् अर्थात् वही तीसरा व द्यून अर्थात् तीसरे से सातवाँ भाव ले लें तो योग पूर्ण होता है। अतः इन योगों में प्रोक्त अवस्था में तथ्य अवश्य है।

(ख) श्लोक 30 के अनुसार शुक्र की अधिष्ठित राशि का स्वामी बुध मंगल से युक्त है। 'रन्ध्राज्जामित्रगे' वाली बात नहीं है। इनका विवाह 23 वें वर्ष में हुआ। योग आधा ही घटित हो रहा है।

अनेक कुण्डलियों में मामूली अन्तर रहने पर भी विवाह की उम्र लगभग कथितानुसार ही पाई गई। अतः इन विवाह वर्षो में कोरी गप्प नहीं है। श्लोकोक्त 5.9.10.11 आदि वर्षो का तात्पर्य यदि 18 वर्ष से कम रख लिया जाए तो चमत्कारिक परिणाम निकलते हैं।

(ग)

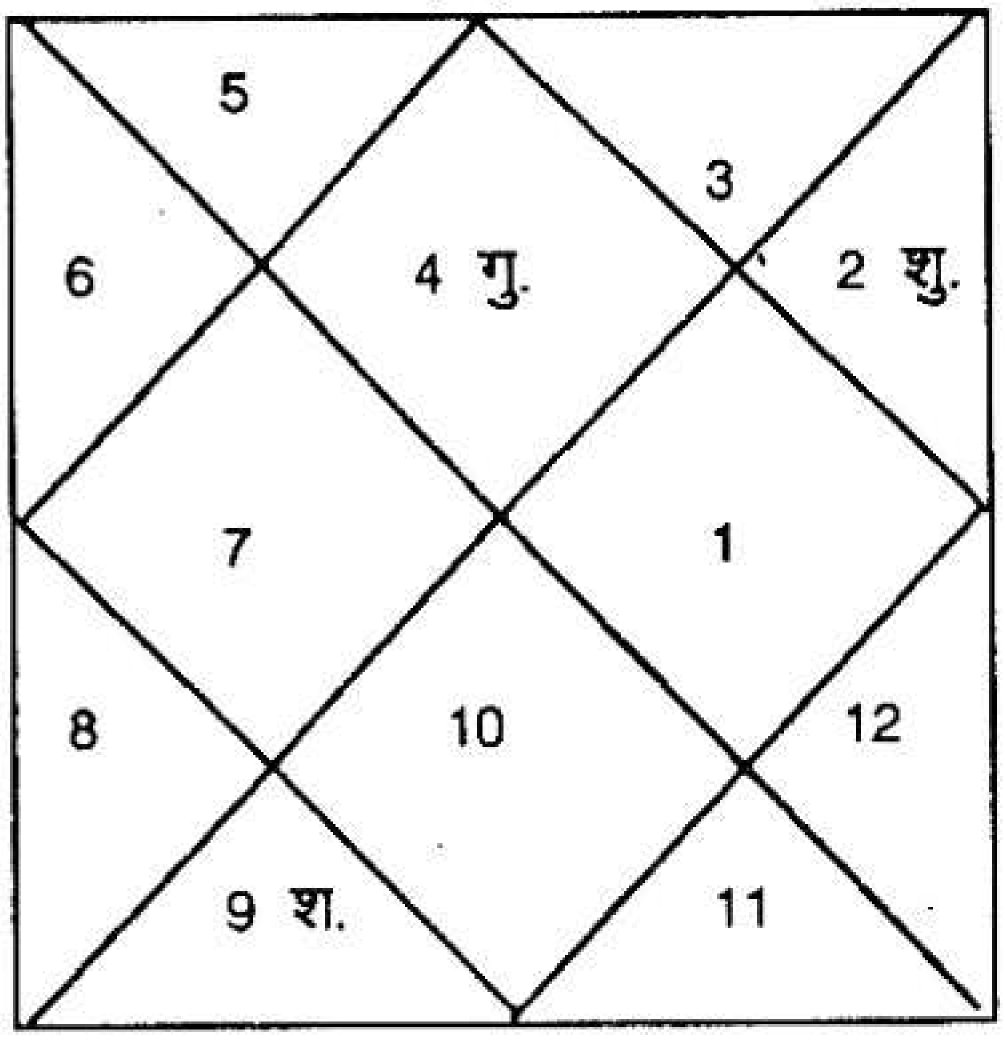

(घ)

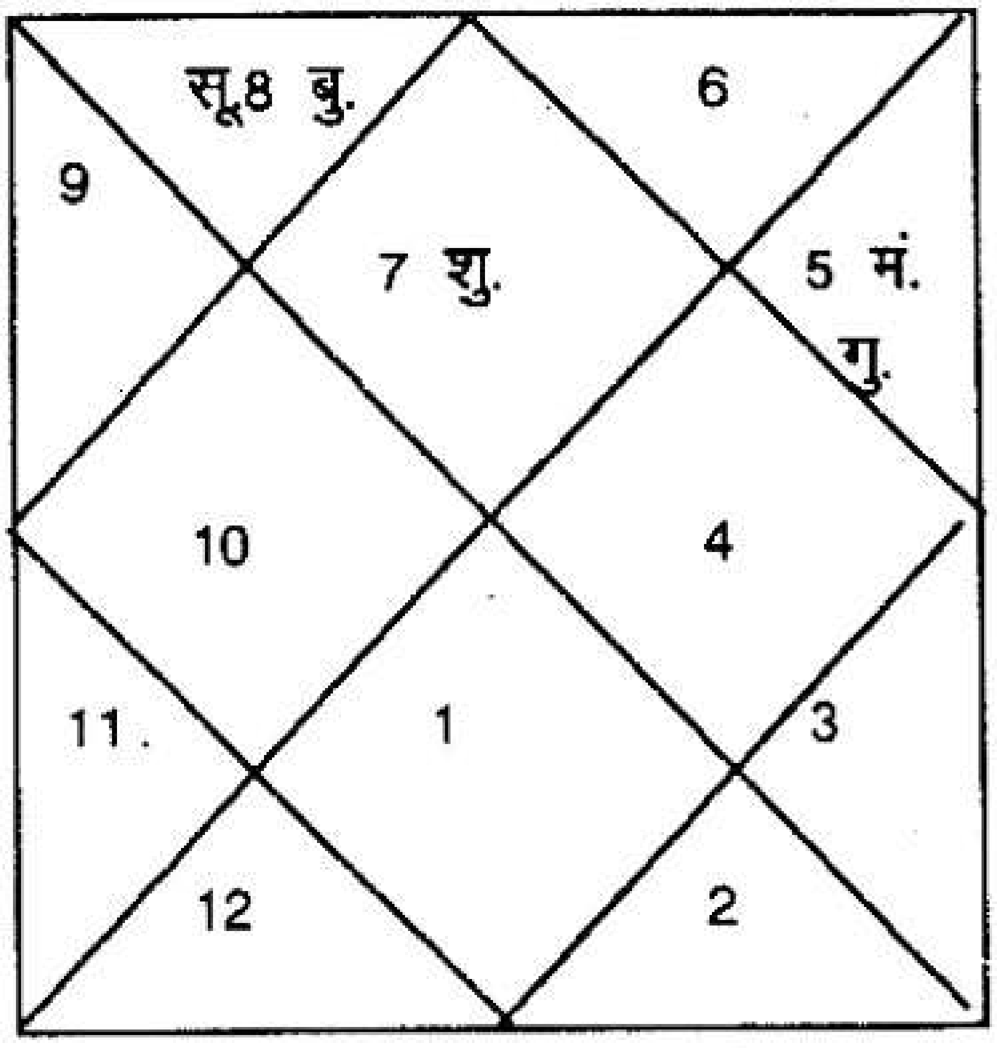

(ग) श्लोक 22 के अनुसार सप्तमेश शुभ राशि में है तथा शुक्र स्वक्षेत्री है। इनका विवाह मूँछों वाला होने से पहले ही हो गया था। यह एक राष्ट्रीय नेता की कुण्डली है।

(घ) इस कुण्डली में श्लोक 29 का योग पूरा घट रहा है, लेकिन इनका विवाह 35 वर्ष के लगभग हुआ था। श्लोकानुसार 13 वर्ष में होना सम्भव था। यह कुण्डली अपवाद मानी जा सकती है। ये एक व्यापारी हैं तथा घरेलू उत्तरदायित्वों के कारण स्वेच्छा से ही विलम्ब से विवाह किया था।

स्त्री मृत्यु समय :–

दारेशे नीचराशिस्थे शुक्रे रन्धारिसंयुते ।
अष्टादशे त्रयस्त्रिंशे वत्सरे दारनाशनम् ।। 35 ।।
मदेशे नाशराशिस्थे व्ययेशे मंदराशिगे ।
तस्य चैकोनविंशब्दे दारनाशं विनिर्दिशेत् ।। 36 ।।
कुटुम्ब स्थानगो राहुः कलत्रे भौमसंयुते ।
पाणिग्रहे च त्रिदिने सर्पदंष्टे वधूमृतिः ।। 37 ।।
रन्धस्थानगते शुक्रे तदीशे सौरिराशिगे ।
द्वादशैकोनविंशाब्दे दारनाशं विनिर्दिशेत् ।। 38 ।।

(i) यदि सप्तमेश नीच राशि में गया हो तथा शुक्र 6.8 में हो तो 18 या 33 वर्ष में पत्नी से वियोग होता है ।

(ii) यदि सप्तमेश अष्टम में हो तथा द्वादशेश सप्तम में हो तो 19 वर्ष में पत्नी का लोप हो जाता है ।

(iii) द्वितीय स्थान में राहु तथा सप्तम में मंगल हो तो विवाह से तीन दिन के अन्दर ही सर्पदंश (या विष प्रयोग) से वधू को कष्ट होता है ।

(iv) शुक्र अष्टम में हो तथा अष्टमेश शनि की राशि में हो तो 12 या 19 वर्ष में पत्नी का नाश होता है ।

लग्नेशे नीचराशिस्थे धनेशे निधनं गते ।
त्रयोदशे तु सम्प्राप्ते कलत्रस्य मृतिर्भवेत् ।। 39 ।।
शुक्राज्जामित्रगेचन्द्रेचन्द्राज्जामित्रगेबुधे ।
रन्ध्रेशे सुतभावस्थे प्रथमं दशमाब्दिकम् ।। 40 ।।
द्वाविंशे च द्वितीयं च त्रयस्त्रिंशे तृतीयकम् ।
विवाहं लभते मर्त्यो नात्र कार्या विचारणा ।। 41 ।।
षष्ठे च भवने भौमः सप्तमे राहु संस्थितिः ।
अष्टमे च यदा सौरिस्तस्य भार्या न जीवति ।। 42 ।।

(i) यदि लग्नेश नीच राशि में हो व द्वितीयेश अष्टम में हो तो 13वें वर्ष में पत्नी की मृत्यु होती है ।

(ii) शुक्र से सप्तम में चन्द्रमा व चन्द्रमा से सप्तम में बुध हो एवं अष्टमेश पंचम में हो तो जातक का पहला विवाह 10 वर्ष में, दूसरा 22 वें वर्ष में व तीसरा 33 वें वर्ष में होता है। इसमें विशेष संशय नहीं करना चाहिए।

(iv) षष्ठ में मंगल, सप्तम में राहु व अष्टम में शनि (क्रूर लग्नाधियोग) हो तो पत्नी जीवित नहीं रहती है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
सप्तमभावफलाध्याय एकोनविंशः ।। **19** ।।

20

।। अथायुर्भावफलाध्यायः ।।

दीर्घायुर्योग :–

आयुर्भावफलं चाथ कथयामि द्विजोत्तम ! ।
आयुःस्थानाधिपः केन्द्रे दीर्घमायुः प्रयच्छति ।। 1 ।।
आयुः स्थानाधिपः पापैः सह तत्रैव संस्थितः ।
करोत्यल्पायुषं जातं लग्नेशोऽप्यत्र संस्थितः ।। 2 ।।
एवं हि शनिना चिन्ता कार्या तर्कैर्विचक्षण ! ।
कर्माधिपेन च तथा चिन्तनमायुषस्तथा ।। 3 ।।

हे द्विजवर मैत्रेय ! अब मैं (पराशर) आयुभाव का फल कहता हूं। यदि अष्टमेश केन्द्र में स्थित हो तो दीर्घायु होती है। यदि पणफर में हो तो मध्यायु तथा आपोक्लिम में हो तो अल्पायु––यह इसी तर्क से स्वयं स्पष्ट है।

यदि अष्टमेश बहुत से पापग्रहों के साथ अष्टम में हो तो अल्पायु होती है। यदि लग्नेश भी कई पापग्रहों से युक्त होकर अष्टम में हो तो भी अल्पायु योग होता है।

इसी पद्धति से शनि से भी विचार करें तथा दशमेश से भी विचार करना चाहिए। अर्थात् अष्टमेश, शनि व दशमेश केन्द्र में हों तो दीर्घायु,

बहुत पापयुक्त दृष्ट हों तो अल्पायु, पणफर में हों तो मध्यायु, आपोक्लिम में में हो तो अल्पायु होती है।

हमारे क्रमिक उदाहरण में अष्टमेश शनि त्रिकोण (पणफर) है। अतः मध्यायु। शनि ही अष्टमेश है। अतः शनि से भी मध्यायु तथा दशमेश मंगल भी पणफर में है अतः मध्यायु ही प्रतीत होती है।

षष्ठे व्ययेऽपि षष्ठेशो व्ययाधीशो रिपौ व्यये।
लग्नाष्टमे स्थितो वापि दीर्घमायुः प्रयच्छति।। 4।।
स्वस्थाने स्वांशके वापि मित्रेंऽशे मित्रमन्दिरे।
दीर्घायुषं करोत्येव लग्नेशोऽष्टमपः पुनः।। 5।।
लग्नाष्टमपकर्मेशमन्दाःकेन्द्रत्रिकोणयोः।
लाभे वा संस्थितास्तद्वत् दिशेयुर्दीर्घमायुषम्।। 6।।
एवं बहुविधा विद्वन्नायुर्योगाः प्रकीर्तिताः।
एषु यो बलवांस्तस्यानुसारादायुरादिशेत्।। 7।।

(i) यदि षष्ठेश 6.12 में हो, द्वादशेश 6.12 में हो, अथवा लग्न से अष्टम में हो तो दीर्घायु होती है। यह विपरीत राजयोग है। इसका विस्तार उत्तरकालामृत में देखें। अर्थात् 6.8.12 के स्वामी किसी भी प्रकार से इन्हीं भावों में हों तो दीर्घायु व सुख होता है।

(ii) यदि लग्नेश या अष्टमेश या दोनों ही स्वराशि, स्वनवांश, मित्रराशि मित्रनवांश में हों तो दीर्घायु करते हैं।

(iii) 1.8.10 भावेश व शनि केन्द्र त्रिकोण में या लाभ में हों तो दीर्घायु होती है।

(iv) इस प्रकार बहुत से आयुयोग होते हैं। जिनका संकेत मात्र यहाँ किया गया है। योगकारकों में जो सबसे बली हो, उससे बनने वाले योगानुसार आयु होगी।

लग्नेश, अष्टमेश, दशमेश, शनि व बृहस्पति, लग्न चन्द्र व अष्टमभाव ये आयु के उपकरण हैं। इनमें जो सबसे बली हो उससे आयु विचार होना चाहिए। हमारे क्रमिक उदाहरण में दशमेश मंगल त्रिकोण में स्वगृही है। अष्टमेश शनि पणफर में शत्रुक्षेत्री है। लग्नेश चन्द्रमा पक्षबली लेकिन आपोक्लिम में है। गुरु समभाव में मित्रराशि में शुभदृष्ट है। अतः जीवप्रदाता गुरु अनुकूल है। मंगल से दीर्घायु व शनि से मध्यायु व चन्द्र से अल्पायु है। सबसे बली मंगल है अतः दीर्घखण्ड की निचली सीमा आयु होगी। यह 65–75 वर्ष होती है। अतः इसी बीच में आयु होगी। दशान्तर्दशा

समन्वय से मृत्यु समय निश्चय द्वारा वास्तविक आयु निर्धारित की जा सकेगी।

अल्पायुर्योग :–

अष्टमाधिपतौ केन्द्रे लग्नेशे बलवर्जिते।
विंशद् वर्षाण्यसौ जीवेद् द्वात्रिंशंत्परमायुषम्।।8।।
रन्ध्रेशे नीचराशिस्थे रन्ध्रेपापग्रहैर्युते।
लग्नेशे दुर्बले जन्तोरल्पायुर्भवति ध्रुवम्।।9।।
रन्ध्रेशे पाप संयुक्ते रन्ध्रे पापग्रहैर्युते।
व्यये क्रूरग्रहाक्रान्ते जातमात्रं मृतिर्भवेत्।।10।।

(i) यदि अष्टमेश केन्द्र में हो व लग्नेश बलरहित हो तो 20 से 32 वर्ष के मध्य आयु होती है।

(ii) अष्टमेश नीच में हो तथा अष्टम में पापग्रह हों, लग्नेश निर्बल हो तो जातक अल्पायु होता है।

(iii) अष्टमेश के साथ पापग्रह हों, अष्टम में एकाधिक पापग्रह हों तथा द्वादश में पापग्रह हो तो पैदा होते ही मृत्यु होती है।

केन्द्रत्रिकोणगाः पापाः शुभाः षष्ठाष्टगाः यदि।
लग्ने नीचस्थरन्ध्रेशो जातः सद्यो मृतो भवेत्।।11।।
पंचमे पापसंयुक्ते रन्ध्रेशे पाप संयुते।
रन्ध्रे पापग्रहैर्युक्ते स्वल्पमायुः प्रजायते।।12।।
रन्ध्रेशे रन्ध्रराशिस्थे चन्द्रेपापसमन्विते।
शुभदृष्टिविहीने च मासान्ते च मृतिर्भवेत्।।13।।

(i) केन्द्र व त्रिकोण में पाप ग्रह हों, सारे शुभग्रह 6.8 में हों, लग्न में अष्टमेश नीच राशि में हो तो तुरन्त मृत्यु होती है।

(ii) पंचम में पाप ग्रह, अष्टमेश पापयुक्त व अष्टम में पाप ग्रह हो तो स्वल्पायु होती है।

(iii) अष्टमेश अष्टम में हो, चन्द्रमा पाप–युक्त–दृष्ट हो और शुभ ग्रह की दृष्टि योग न हो तो एक मास आयु होती है।

पुनर्दीर्घायुर्योग :–

लग्नेशे स्वोच्चराशिस्थे चन्द्रे लाभसमन्विते।
रन्ध्रस्थानगते जीवे दीर्घमायुर्न संशयः।।14।।

लग्नेशोऽतिबली दृष्टः केन्द्रसंस्थैः शुभग्रहैः ।

धनैः सर्वगुणैः सार्ध दीर्घमायुः प्रयच्छति ।। 15 ।।

यदि लग्नेश स्वराशि या स्वोच्च में हो एवं चन्द्रमा लाभ में, गुरु अष्टम में हो तो दीर्घायु निश्चय से होती है ।

लग्नेश बहुत बलवान् हो तथा केन्द्रगत शुभ ग्रहों से देखा जाता हो तो धन व सब गुणों के साथ दीर्घायु भी देता है ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायामायुर्भावफलाध्यायो विंश ।। 20 ।।

21

।। अथ भाग्यभावफलाध्यायः ।।

भाग्यशाली योग :–

अथभाग्यभवं विप्र ! फलं वक्ष्ये तवाग्रतः ।

सबलो भाग्यपे भाग्ये जातो भाग्ययुतो नरः ।। 1 ।।

भाग्यस्थानगते जीवे तदीशे केन्द्रसंस्थिते ।

लग्नेशे बलसंयुक्ते बहुभाग्ययुतो भवेत् ।। 2 ।।

भाग्येशे बलसंयुक्ते भाग्ये भृगुसमन्विते ।

लग्नात् केन्द्रगते जीवे पिता भाग्यसमन्वितः ।। 3 ।।

अब मैं (पराशर) भाग्य भाव का फल विचार कहता हूँ। यदि भाग्येश बलवान् हो तथा नवम भाव में ही स्थित हो तो मनुष्य भाग्यशाली होता है ।

यदि भाग्यस्थान में बृहस्पति हो तथा भाग्येश केन्द्र में गया हो एवं लग्नेश वली हो तो मनुष्य बहुत भाग्यशाली होता है ।

यदि भाग्येश (नवमेश) बलवान् हो तथा नवम में शुक्र व केन्द्र में बृहस्पति हो तो मनुष्य का पिता बहुत भाग्यशाली होता है ।

निर्धन पिता के योग :–

भाग्यस्थानाद्द्वितीये वा सुखे भौमसमन्विते ।

भाग्येशे नीचराशिस्थे पिता निर्धन एव हि ।। 4 ।।

भाग्येशे परमोच्चस्थे भाग्यांशे जीवसंयुते ।
लग्नाच्चतुष्टये शुक्रे तत्पिता दीर्घजीवनः ।। 5 ।।
भाग्येशे केन्द्रभावस्थे गुरुणा च निरीक्षिते ।
तत्पितावाहनैर्युक्तो राजा वा तत्समो भवेत् ।। 6 ।।
भाग्येशे कर्मभावस्थे कर्मेशे भाग्यराशिगे ।
शुभदृष्टे धनाढ्यश्च कीर्तिमांस्तत् पिता भवेत् ।। 7 ।।

यदि भाग्य से द्वितीय (दशम) में या लग्न में मंगल हो तथा नवमेश नीच राशि में गया हो तो जातक का पिता निर्धन होता है ।

यदि भाग्येश परमोच्च में गया हो तथा भाग्य भाव के नवांश में गुरु हो, लग्न से केन्द्र में शुक्र हो तो पिता दीर्घजीवी होता हैं ।

यदि भाग्येश केन्द्र में हो तथा उसे बृहस्पति देखता हो तो जातक का पिता अनेक वाहनों से युक्त राजा या राजातुल्य होता है ।

यदि भाग्येश दशम में व दशमेश नवम में हो तथा नवमेश को शुभ ग्रह देखें तो मनुष्य का पिता कीर्तिमान् व धनी होता है ।

भाग्यशाली ग्रहनिर्णय :–

भाग्येशो भार्गवार्यौच द्वावेव भाग्यदायकौ ।
शुभभावगतौ स्यातां भाग्यवांछुभदृग्युते ।। 8 ।।
गुरुशुक्रौ च पाताले नवमे शुभराशिगे ।
भाग्येशे कोणकेन्द्रस्थे बहुभाग्ययुतो नरः ।। 9 ।।

नवमेश व गुरु शुक्र विशेषतया भाग्यशाली ग्रह होते हैं । यदि ये दोनों शुभ भाव––केन्द्र त्रिकोण में गए हों या शुभ ग्रह से दृष्टयुत हों तो मनुष्य भाग्यशाली होता है ।

गुरु व शुक्र 4.10 में हो तथा शत्रु ग्रह की राशि में गए हों, एवं नवमेश केन्द्रत्रिकोण में हो तो मनुष्य बहुत भाग्यशाली होता है ।

पितृभक्ति योग :–

परमोच्चांशगे सूर्ये भाग्येशे लाभसंस्थिते ।
धर्मिष्ठोनृपवात्सल्यः पितृभक्तो भवेन्नरः ।। 10 ।।

लग्नात् त्रिकोणगे सूर्ये भाग्येशे सप्तमस्थिते ।

गुरुणा सहिते दृष्टे पितृभक्तिसमन्वितः ।। 11 ।।

यदि सूर्य परमोच्च में हो व भाग्येश एकादश में हो तो मनुष्य पितृभक्त, धार्मिक व राजा का प्रिय पात्र होता है ।

लग्न से त्रिकोण में सूर्य व नवमेश सप्तम में हो तथा गुरु की दृष्टि या योग हो तो मनुष्य पितृभक्त होता है ।

वाहन व कीर्ति योग :–

भाग्येशे धनभावस्थे धनेशे भाग्यराशिगे ।

द्वात्रिंशत्परतो भाग्यं वाहनं कीर्तिसम्भवः ।। 12 ।।

यदि नवमेश द्वितीय भाव में हो तथा धनेश नवम में हो तो 32 वर्ष की अवस्था के बाद भाग्योदय, कीर्ति व वाहन होता है ।

पिता–पुत्र में शत्रुता :–

लग्नेशे भाग्यराशिस्थे षष्ठेशेन समन्विते ।

अन्योन्यवैरं ब्रुवते जनकः कुत्सितो भवेत् ।। 13 ।।

यदि लग्नेश नवम में हो तथा षष्ठेश साथ में हो तो पिता व पुत्र की परस्पर शत्रुता होती है तथा पिता निन्दित होता है ।

भिक्षावृत्ति योग :–

कर्माधिपेन सहितो विक्रमेशेऽपि निर्बलः ।

भाग्यपो नीचमूढस्थो योगो भिक्षाशनप्रदः ।। 14 ।।

यदि दशमेश व निर्बल तृतीयेश एक साथ हों तथा नवमेश नीच या अस्तंगत हो तो जातक भीख माँगकर निर्वाह करता है ।

पिता का अनिष्ट :–

षष्ठाष्टमव्यये भानू रन्ध्रेशे भाग्यसंयुते ।

व्ययेशे लग्नराशिस्थे षष्ठेशे पंचमे स्थिते ।। 15 ।।

जातस्य जननात्पूर्वं जनकस्य मृतिर्भवेत् ।

रन्ध्रस्थानगते सूर्यो रन्ध्रेशे भाग्यभावगे ।। 16 ।।

जातस्य प्रथमाब्देतु पितुर्मरणमादिशेत् ।

यदि सूर्य 6.8.12 में हो, भाग्य भाव में अष्टमेश एवं लग्न में व्ययेश तथा पंचम में षष्ठेश हो तो जातक के पैदा होने से पूर्व ही पिता की मृत्यु हो जाती है ।

यदि सूर्य अष्टम में हो व भाग्य भवन में अष्टमेश हो तो जातक के जन्म से एक वर्ष के भीतर ही पिता की मृत्यु हो जाती है।

व्ययेशे भाग्यराशिस्थे नीचांशे भाग्यनायके।। 17।।

तृतीये षोडशे वर्षे जनकस्य मृतिर्भवेत्।

लग्नेशे नाशराशिस्थे रन्ध्रेशे भानुसंयुते।। 18।।

द्वितीये द्वादशे वर्षे पितुर्मरणमादिशेत्।

भाग्याद् रन्ध्रगते राहौ भाग्याद्भाग्यगते रवौ।। 19।।

षोडशेऽष्टादशे वर्षे जनकस्य मृतिर्भवेत्।

यदि द्वादशेश नवम में हो, नवमेश नीच नवांश में गया हो तो तीसरे या सोलहवें वर्ष में पिता की मृत्यु होती है।

यदि लग्नेश अष्टम में हो व अष्टमेश सूर्य के साथ हो तो दूसरे या बारहवें वर्ष में पिता की मृत्यु होती है।

नवम से अष्टम अर्थात् चतुर्थ भाव में राहु, नवम से नवम अर्थात् पंचम में सूर्य हो तो 16 या 18 वर्ष में पिता की मृत्यु होती है।

राहुणा सहिते सूर्ये चन्द्राद्भाग्यगते शनौ।। 20।।

सप्तमैकोनविंशाब्दे तातस्यमरणं ध्रुवम्।

भाग्येशे व्ययराशिस्थे व्ययेशे भाग्यराशिगे।। 21।।

वेदाब्धिमितवर्षाच्च पितुर्मरणमादिशेत्।

रव्यंशे च स्थिते चन्द्रे लग्नेशे रन्ध्रसंयुते।। 22।।

पंचत्रिंशैकचत्वारिंशद्वर्षे मरणं पितुः।

यदि राहु व सूर्य साथ हों, चन्द्रमा से नवम स्थान में शनि हो तो 7 या 19 वर्ष में पिता की मृत्यु होती है।

यदि नवमेश बारहवें भाव में तथा द्वादशेश भाग्य भवन में हो तो 44वें वर्ष में पिता की मृत्यु होती है।

यदि चन्द्रमा सिंह नवांश में हो तथा लग्नेश अष्टम भाव में हो तो 35 या 41 वर्ष में पिता की मृत्यु होती है।

पितृस्थानाधिपे सूर्ये मन्दभौमसमन्विते।। 23।।

पंचाशद्वत्सरे प्राप्ते जनकस्य मृतिर्भवेत्।

भाग्यात्सप्तमगे सूर्ये भ्रातृसप्तमगस्तमः।। 24।।

षष्ठेऽब्दे पंचविंशाब्दे पितुर्मरणमादिशेत्।

रन्ध्रजामित्रगे मन्दे मन्दाज्जामित्रगे रवौ।। 25।।

त्रिंशैकविंशे षड्विंशे जनकस्य मृतिर्भवेत् ।

यदि सूर्य दशमेश होकर शनि व मंगल से युक्त हो तो 50वें वर्ष में पिता की मृत्यु होती है ।

यदि तृतीय में सूर्य व नवम में राहु हो तो 6 या 25वें वर्ष में यथासम्भव पिता की मृत्यु होती है ।

यदि 8.7 भाव में शनि व शनि से सप्तम में सूर्य हो तो 21,30 या 26 वर्ष में पिता की मृत्यु होती है ।

भाग्येशे नीचराशिस्थे तदीशे भाग्यराशिगे ।। 26 ।।

षड्विंशेऽब्दे त्रयस्त्रिंशे पितुर्मरणमादिशेत् ।

एवं विचार्य बहुधा फलं प्राज्ञो विनिर्दिशेत् ।। 27 ।।

यदि नवमेश नीच में गया हो तथा नवमेश का नीचेश नवम में हो तो 26 या 33 वर्ष में पिता की मृत्यु होती है ।

इस प्रकार अनेक प्रकार से विचार करके बुद्धिमान् दैवज्ञ को फलादेश करना चाहिए ।

भाग्योदय विचार :–

परमोच्चांशगे शुक्रे भाग्येशेन समन्विते ।

भ्रातृस्थाने शनियुते बहुभाग्याधिपो भवेत् ।। 28 ।।

गुरुणा संयुते भाग्ये तदीशे केन्द्रराशिगे ।

विंशद्वर्षात्परं चैव बहुभाग्यं विनिर्दिशेत् ।। 29 ।।

परमोच्चांशगे सौम्ये भाग्येशे भाग्यराशिगे ।

षट्त्रिंशाच्च परं चैव बहुभाग्यं विनिर्दिशेत् ।। 30 ।।

लग्नेशे भाग्यराशिस्थे भाग्येशे लग्नसंयुते ।

गुरुणा संयुते द्यूने धनवाहनलाभकृत् ।। 31 ।।

यदि शुक्र अपने परमोच्च में नवमेश के साथ हो तथा तृतीय में शनि हो तो मनुष्य बहुत भाग्यशाली होता है ।

यदि नवम स्थान में बृहस्पति हो तथा नवमेश केन्द्र में गया हो तो 20 वर्ष की अवस्था के बाद बहुत भाग्यशाली होता है ।

यदि बुध परमोच्च में हो तथा नवमेश नवम में हो तो 36 वर्ष के उपरान्त बहुत भाग्योदय होता है ।

यदि लग्नेश नवम में व नवमेश लग्न में हो तथा गुरु सप्तम में रहे तो मनुष्य को सदैव धन व वाहन का लाभ होता रहता है ।

दुर्भाग्य योग :–

भाग्यात्भाग्यगतो राहुस्तदीशे निधनं गते।
भाग्येशेनीचराशिस्थे भाग्यहीनो भवेन्नरः।। 32।।
भाग्यस्थानगते मन्दे शशिना च समन्विते।
लग्नेशे नीचराशिस्थे भिक्षाशी च नरो भवेत्।। 33।।

यदि पंचम स्थान में राहु तथा पंचमेश या भाग्येश अष्टम में नीचराशिगत हो तो मनुष्य भाग्यहीन होता है।

यदि नवम में शनि तथा चन्द्रमा हों और लग्नेश नीच राशि में गया तो मनुष्य भीख माँगकर जीवन बिताता है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां भाग्यभाव फलाध्याय एकविंशः।। **21**।।

22

।। अथ दशमभावफलाध्यायः।।

यशस्वी योग –

सबले कर्मभावेशे स्वोच्चे स्वांशे स्वराशिगे।
जातस्तातसुखेनाढ्यो यशस्वी शुभकर्मकृत्।। 1।।
कर्माधिपो बलोनश्चेत् कर्मवैकल्यमादिशेत्।
सैहिःकेन्द्रत्रिकोणस्थो ज्योतिष्टोमादियागकृत्।।2।।

यदि दशमेश बलवान् हो, अपने उच्च, अपनी राशि या उच्चनवांश में हो तो व्यक्ति को पिता का सुख मिलता है तथा वह शुभ कर्म करने वाला यशस्वी होता है।

यदि दशमेश निर्बल हो तो जातक प्रायः कर्म करने में शिथिल होता है। यदि राहु त्रिकोण या केन्द्र में (विशेषतया केन्द्रेश त्रिकोण के साथ) हो तो मनुष्य ज्योतिष्टोमादि याग (धार्मिक कार्य) करने वाला होता है।

शुभाशुभ कर्म निर्णय :–

कर्मेशे शुभसंयुक्ते शुभस्थानगते तथा ।
राजद्वारे च वाणिज्ये सदा लाभोऽन्यथाऽन्यथा ।। 3 ।।
दशमे पापसंयुक्ते लाभे पापसमन्विते ।
दुष्कृतिं लभते मर्त्यः स्वजनानां विदूषकः ।। 4 ।।
कर्मेशे नाशराशिस्थे राहुणा संयुते तथा ।
जनद्वेषी महामूर्खो दुष्कृतिं लभते नरः ।। 5 ।।
कर्मेशे द्यूनराशिस्थे मन्दभौमसमन्विते ।
द्यूनेशेपापसंयुक्ते शिश्नोदरपरायणः ।। 6 ।।

दशमेश यदि शुभ ग्रह से युक्त होकर शुभ स्थान में हो तो राजा व व्यापार से धनलाभ होता है। इसके विपरीत अशुभ स्थान (6.8.12) में हो तो राजा व व्यवसाय से धनहानि होती है।

यदि दशम स्थान में पाप ग्रह हो तथा लाभ में भी पाप ग्रह हो तो मनुष्य बुरे कार्य करने वाला तथा अपने लोगों को भी बदनाम करने वाला होता है।

यदि दशमेश अष्टम भाव में राहु के साथ हो तो मनुष्य जनता द्वेषी, महामूर्ख तथा कुकर्मपरायण होता है।

यदि दशमेश सप्तम में शनि मंगल के साथ हो तथा सप्तमेश पापयुक्त हो तो मनुष्य सदैव अपने पेट व अपने इन्द्रियसुख के लिए कुछ भी कर सकता है। अर्थात् धन व स्त्रीसुख के कारण वह कितना ही नीचे गिर सकता है।

सुख व विलास योग :–

तुंगराशिं समाश्रित्य कर्मेशे गुरुसंयुते ।
भाग्येशे कर्मराशिस्थे मानैश्वर्यप्रतापवान् ।। 7 ।।
लाभेशे कर्मराशिस्थे कर्मेशे लग्नसंयुते ।
तावुभौ केन्द्रगौ वापि सुख जीवनभाग् भवेत् ।। 8 ।।
कर्मेशे बलसंयुक्ते मीने गुरुसमन्विते ।
वस्त्राभरण सौख्यादि लभते नात्र संशयः ।। 9 ।।

यदि दशमेश अपने उच्च में बृहस्पति के साथ हो तथा नवमेश दशम में हो तो मनुष्य सम्मानित, ऐश्वर्यशाली व प्रतापी होता है।

यदि एकादशेश दशम स्थान में हो तथा दशमेश लग्न में हो अथवा दशमेश व लाभेश केन्द्र में ही हों तो मनुष्य सुख भोग से युक्त होता है।

यदि दशमेश बलवान् हो तथा बृहस्पति मीन राशि में हो तो मनुष्य वस्त्राभरणों से युक्त सुखी होता है।

अशुभ योग :–

लाभस्थानगते सूर्ये राहुभौमसमन्विते।
रविपुत्रेणसंयुक्ते कर्मच्छेत्ताभवेन्नरः।।10।।

यदि सूर्य एकादश स्थान में राहु मंगल शनि से युक्त हो तो मनुष्य कर्मच्छेत्ता कार्यनाशक, स्वयं अपनी हानि करने वाला होता है।

सुकर्म योग :–

मीने जीवे भृगुयुते लग्नेशे बलसंयुते।
स्वोच्चराशिगते चन्द्रे सम्यज्ज्ञानार्थवान् भवेत्।।11।।
कर्मेशे लाभराशिस्थे लाभेशे लग्नसंस्थिते।
कर्मराशिस्थिते शुक्रे रत्नवान् स नरो भवेत्।।12।।
केन्द्रत्रिकोणगे कर्मनाथे स्वोच्चसमाश्रिते।
गुरुणासहिते दृष्टे स कर्मसहितो भवेत्।।13।।
कर्मेशे लग्न भावस्थे लग्नेशेन समन्विते।
केन्द्रत्रिकोणगे चन्द्रे सत्कर्मनिरतो भवेत्।।14।।

यदि बृहस्पति मीन राशि में शुक्र के साथ हो, लग्नेश बलवान् हो तथा चन्द्रमा उच्च में हो तो मनुष्य विशेष ज्ञानवान्, धनवान् होता है।

यदि दशमेश एकादश में व एकादशेश लग्न में एवं शुक्र दशम में हो तो मनुष्य रत्नों से युक्त अर्थात् हीरे–मोती वाला होता है।

यदि दशमेश केन्द्रत्रिकोण में हो तथा वह अपने उच्च में हो एवं गुरु से युतदृष्ट हो तो मनुष्य सदैव कर्मशील होता है। अर्थात् सदैव व्यवसाय, व्यापार या रोजगार से युक्त होता है।

यदि दशमेश लग्न में लग्नेश के साथ हो तथा चन्द्रमा केन्द्रत्रिकोण में हो तो मनुष्य सदैव अच्छे कर्मो में रत रहता है।

कुकर्म योग :–

कर्मस्थानगते मन्दे नीचखेचरसंयुते।
कर्मेशे पापसंयुक्ते कर्महीनो भवेन्नरः।।15।।

कर्मेशे नाशराशिस्थे रन्ध्रेशे कर्मसंस्थिते ।
पापग्रहेण संयुक्ते दुष्कर्मनिरतो भवेत् ।। 16 ।।
कर्मेशे नीचराशिस्थे कर्मस्थे पापखेचरे ।
कर्मभात्कर्मगे पापे कर्मवैकल्यमादिशेत् ।। 17 ।।

यदि दशमस्थान में शनि किसी नीचस्थ ग्रह के साथ हो तथा दशमगत नवांश राशि में कोई पाप ग्रह हो तो मनुष्य कर्महीन (आलसी या क्रिया रहित) बुरे कर्म करने वाला होता है ।

यदि दशमेश अष्टम में हो तथा अष्टमेश दशम में रहे, साथ में कोई पाप ग्रह भी हो तो मनुष्य बुरे कर्म करने वाला होता है ।

यदि दशमेश नीच राशि में हो, दशम स्थान में पाप ग्रह हो, दशम से दशम अर्थात् लग्न में पापग्रह हो तो मनुष्य कार्यहीन होता है ।

कीर्तिलाभ योग :–

कर्मस्थानगते चन्द्रे तदीशे तत् त्रिकोणगे ।
लग्नेश केन्द्रभावस्थे सत्कीर्तिसहितो भवेत् ।। 18 ।।
लाभेशे कर्मभावस्थे कर्मेशे बलसंयुते ।
देवेन्द्रगुरुणा दृष्टे सत्कीर्तिसहितो भवेत् ।। 19 ।।
कर्मस्थानाधिपे भाग्ये लग्नेशे कर्मसंयुते ।
लग्नात्पंचमगे चन्द्रे ख्यातनामा नरो भवेत् ।। 20 ।।
इति कर्मफलं प्रोक्तं संक्षेपेण द्विजोत्तम ! ।
ज्ञानकर्मेश सम्बन्धादूह्यमन्यदपि स्वयम् ।। 21 ।।

यदि दशम स्थान में चन्द्रमा, दशमेश त्रिकोण में व लग्नेश केन्द्र में हो तो मनुष्य सुप्रसिद्ध सत्कीर्तियुक्त होता है ।

यदि लाभेश दशम स्थान में हो, दशमेश बलवान् हो तथा बृहस्पति द्वारा देखा जाए तो मनुष्य सत्कीर्तियुक्त होता है ।

यदि दशमेश नवम में व लग्नेश दशम में हो, लग्न से पंचम में चन्द्रमा रहे तो मनुष्य बहुत प्रसदि्ध होता है ।

इस प्रकार संक्षेप में दशम भाव का फल कहा है । लग्न दशम व लग्नेश दशमेश का परस्पर सम्बन्ध शुभ फल कारक है, इस नियमानुसार स्वबुद्धि से शुभ योगों की कल्पना करनी चाहिए । उदाहरणार्थ दशमेश मंगल दशम में व लग्नेश चन्द्रमा लग्न में रहे । दोनों दशम में, नवम में, लग्न में सर्वोत्तम फलदायक होंगे । दोनों किसी भी प्रकार से 1.9.10 के

अतिरिक्त केन्द्र त्रिकोण में रहें तो उत्तम, अशुभ भावों मे भी वर्गोत्तमी, शुभ राशि में शुभदृष्ट या उच्च, मूलत्रिकोण हों, तो भी मध्यम फलप्रद होंगे। मीन लग्न में गुरु लग्न में एक साथ दशमेश व लग्नेश होकर योगकारक होगा। इत्यादि विषय को विस्तार के साथ अपनी लघु पाराशरी विद्याधरी में लिख चुके हैं।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां दशम भावफलाध्यायो द्वाविंशः।। 22 ।।

23

।। अथ लाभभावफलाध्यायः ।।

बहुलाभ योग :–

लाभाधिपो यदा लाभे तिष्ठेत् केन्द्रत्रिकोणयोः।
बहुलाभं तदा कुर्यात् उच्चे सूर्यांशगोऽपि वा ।। 1 ।।
लाभेशे धनराशिस्थे धनेशे केन्द्रसंस्थिते।
गुरुणा सहिते भावे गुरुलाभं विनिर्दिशेत् ।। 2 ।।
लाभेशे विक्रमे भावे शुभग्रहसमन्विते।
षट्त्रिंशे वत्सरे प्राप्ते सहस्रद्वय निष्कभाक् ।। 3 ।।
केन्द्रत्रिकोणगे लाभनाथे शुभसमन्विते।
चत्वारिंशे तु सम्प्राप्ते सहस्रार्धसुनिष्कभाक् ।4 ।।
लाभस्थाने गुरुयुते धने चन्द्रसमन्विते।
भाग्यस्थानगे शुक्रे षट्सहस्राधिपो भवेत् ।।5 ।।

यदि एकादशेश एकादश भाव में अथवा केन्द्रत्रिकोण में हो अथवा लाभेश उच्च में या सूर्यनवांश में हो तो बहुत लाभ योग होता है।

यदि एकादशेश द्वितीय में व द्वितीयेश केन्द्र में एवं गुरु केन्द्र में धनेश के साथ हो तो बहुत लाभदायक योग होता है।

यदि एकादशेश तृतीय में हो तथा शुभ ग्रह से युक्त हो तो 36 वर्ष का होते–होते दो हजार (सुवर्णमुद्रा) प्राप्त करता है। अर्थात् अच्छा लाभ होता है।

यदि लाभेश केन्द्र या त्रिकोण में और शुभ ग्रह से युक्त हो तो चालीसवें वर्ष में 500 निष्क (सुवर्ण मुद्राएँ) मिलती हैं।

यदि एकादश स्थान में बृहस्पति व धनस्थान में चन्द्रमा हो एवं शुक्र नवम में रहे तो 6000 निष्क (सुवर्ण मुद्राएँ) प्राप्त होती हैं।

मनु के अनुसार 'निष्क' शब्द का अर्थ चार मोहर या अशर्फी, सुवर्ण मुद्राएँ हैं। इसके अलावा एक सुवर्ण मुद्रा (16 मासे = 1 मुद्रा) की तोल भी रामायण की टीका में उल्लिखित है। केवल एक अशर्फी (8 मासे) या अठमासी का अर्थ भी प्रचलित है। आयुर्वेद ग्रन्थ शार्ङ्धर संहिता में 4 मासे का 1 निष्क कहा है। विष्णुगुप्त चाणक्य ने निष्क को दीनार का वाचक मानकर 32 रत्ती अर्थात् 4 मासे का ही माना है। अतः 4 x 4 = 16 मासे का निष्क रामायणकालीन होने से पुराना है तथा मनु के अनुसार 4 सुवर्ण मुद्रा को एक निष्क मानने से इसकी संगति भी लगती है। अतः 16 मासे का 1 निष्क तब 16 x 2000 = 3200 मासे सोना या 16 x 500 = 8000 मासे सोना अथवा 16 x 6000 = 96000 मासे सोना उक्त योगों में क्रमशः प्राप्त होता है। 1 मासा लगभग 1 ग्राम मानने पर 32000 ग्राम अर्थात् 32 किलो 8 किलो एवं 96 किलो सोना या उसका बाजार मूल्य, तदनुसार जातक की सम्पत्ति या संचित धन होता है। इस प्रकार बुद्धि से स्वयं निश्चय करना चाहिए।

अन्य लाभ योग :–

लाभाच्च लाभगे जीवे बुधचन्द्रसमन्विते ।
धनधान्याधिपः श्रीमान् रत्नाद्याभरणैर्युतः ।। 6 ।।
लाभेशे लग्नभावस्थे लग्नेशे लाभसंयुते ।
त्रयस्त्रिंशे तु सम्प्राप्ते सहस्रनिष्क भाग्भवेत् ।। 7 ।।
धनेशे लाभराशिस्थे लाभेशे धनराशिगे ।
विवाहात्परतश्चैव बहुभाग्यं समादिशेत् ।। 8 ।।
भ्रातृपे लाभराशिस्थे लाभेशे भ्रातृसंस्थिते ।
भ्रातृभावाद्धनप्राप्ति दिव्याभरणसंयुतः ।। 9 ।।

यदि एकादश से एकादश (अर्थात् नवम) भाव में गुरु, बुध, चन्द्र हो तो मनुष्य धनधान्य युक्त श्रीमान् रत्नों का स्वामी होता है।

एकादशेश यदि लग्न में बैठा हो, लग्नेश लाभ भवन में हो तो 33 वर्ष की अवस्था तक 1000 निष्क प्राप्त करता है।

धनेश लाभ भवन में व लाभेश धन में गया हो तो मनुष्य का भाग्य विवाह के बाद चमकता है।

यदि तृतीयेश एकादश में हो व एकादशेश तृतीय में गया हो तो भाइयों से धन, आभूषणादि की प्राप्ति होती है।

लाभेशे नीचभेऽस्ते वा त्रिके पापसमन्विते ।

कृतेभूरिप्रयत्नेऽपि नैव लाभः कदाचन् ।। 10 ।।

यदि लाभेश नीचगत, अस्त या 6.8.12 में पापयुक्त हो तो खूब परिश्रम करने पर भी लाभ नहीं होता है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां लाभ–भावफलाध्यायस्त्रयोविंशः ।। **23** ।।

24

।। अथ व्ययभावफलाध्यायः ।।

व्ययेशे शुभसंयुक्ते स्वभे स्वोच्चगतेऽपि वा ।

व्यये चाशुभसंयुक्ते शुभकार्ये व्ययस्तथा ।। 1 ।।

चन्द्रो व्ययाधिपो धर्म लाभमन्त्रेषु संस्थितः ।

स्वोच्चे स्वर्क्षे निजांशे वा लाभधर्मात्मजांशके ।। 2 ।।

दिव्यागारादिपर्यङ्कोदिव्यगन्धैकभोगवान् ।

परार्ध्यरमणो दिव्यवस्त्रमाल्यादिभूषणः ।। 3 ।।

यदि व्ययेश शुभ ग्रह से युक्त हो या स्वराशि, स्वोच्च में अथवा व्ययभाव में शुभ ग्रह हो तो मनुष्य का धन अच्छे कार्यो में खर्च होता है।

यदि द्वादश भाव का स्वामी चन्द्रमा 9.5.11 में हो अथवा स्वोच्च, स्वराशि, स्वनवांश में हो अथवा 5.9.11 के नवांश में हो तो मनुष्य बहुत उच्चकोटि के स्वर्णिम सुखों से सम्पन्न घरवाला, शय्या स्थान वाला, स्वर्गीय सुखों को भोगने वाला, खूब विलासितापूर्ण जीवन बिताने वाला, बहुत कीमती वस्तुओं का स्वामी, सर्वोत्तम वस्त्रादि पहनने वाला होता है।

एवं स्वशत्रुनीचांशेऽष्टमांशे वाऽष्टमे रिपौ ।

संस्थितः कुरुते जातं कान्तासुखविवर्जितम् ।। 4 ।।

व्ययाधिक्य परिक्लान्तं दिव्यभोगनिराकृतम् ।

सहि केन्द्रत्रिकोणस्थः स्वस्त्रियालंकृतः स्वयम् ।। 5 ।।

यदि व्ययेश चन्द्रमा (या कोई भी ग्रह) अपने शत्रु के नवांश, नीच नवांश, अष्टम भाव व गत नवांश में हो या 6.8 भावों में हो तो मनुष्य को स्त्री का सुख प्रायः नहीं होता । ऐसा व्यक्ति अधिक खर्च से सदैव परेशान रहने वाला तथा विलास सुखभोग सामग्री से रहित जीवन बिताता है ।

यदि व्ययेश 1.4.7.10.5.9 में हो तो मनुष्य का अपनी स्त्री के साथ बहुत मेल या योग्य सम्बन्ध होता है ।

एवं लग्नात्फलं चैतदात्मनः परिकीर्तितम् ।

एवं भ्रात्रादि. भावेषु तत्तत्सर्व विचिन्तयेत् ।। 6 ।।

इस प्रकार लग्न से विविध भावों का फल जातक के लिए बताया गया है । इसी पद्धति से भाई, पुत्र, पत्नी माता पिता आदि का भी फल जान लेना चाहिए ।

यदि भाई का फल जानना हो तो तृतीत भाव को लग्न तथा तृतीयेश को भ्रातृ लग्नेश मानकर इसी विधि से बारह भावों की कल्पना करें । तदनुसार जिस भाव में भावेश या शुभ ग्रह का स्वोच्चादिगत ग्रह हो, उस भाव की वृद्धि समझें ।

हमारे क्रमिक उदाहरण में जातक का कर्क लग्न है । जातक के पुत्रादि के विषय में फल जानना अभीष्ट है । तब पंचम भाव को पुत्र लग्न माना । पुत्रभाव में मंगल भावेश स्थित है । साथ में शनि राहु है ।

पुत्र लग्नोदाहरण

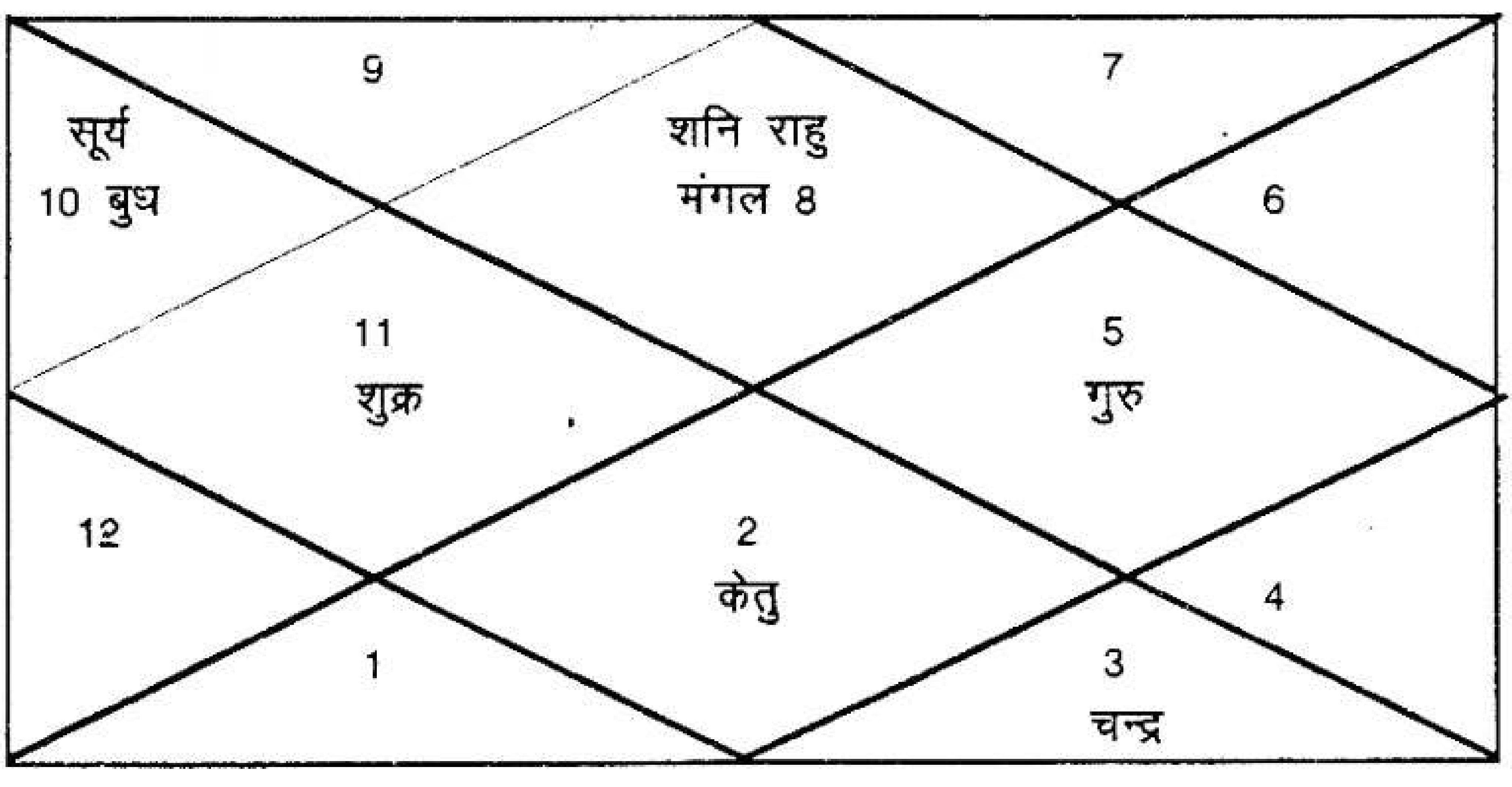

लग्न में लग्नेश, चतुर्थेश व उनके साथ राहु केतु बलवान् व शुभ हैं। केन्द्र में धनेश व पंचमेश होकर गुरु स्थित है, यह उक्त शुभता को बढ़ाता है। केन्द्र में शुक्र गुरु का दृष्टि सम्बन्ध उक्त फल को और बढ़ाता है। लेकिन भाग्येश चन्द्रमा अष्टम में बैठकर अशुभ है। शुभ ग्रह होने से आयुष्यवर्धक है। पुत्रों की पत्नियाँ शुक्र के कारण गुणवती व रूपवती रहेंगीं। इत्यादि प्रकार से समझना चाहिए।

प्रत्यक्ष व परोक्ष फलदाता ग्रह :–

दृश्यचक्रार्धगाः खेटाः प्रत्यक्ष फलदायकाः।
अदृश्यार्धगताः खेटाः परोक्षे फलदाः स्मृताः।। 7।।

लग्न के दृश्यभाग (सप्तम भाव स्पष्ट से आगे 8.9.10.11.12 व लग्न स्पष्ट तक) में स्थित ग्रह प्रत्यक्ष फल देने वाले हैं। अर्थात् अपनी शुभ स्थिति से विशेष फल देते हैं। इसके विपरीत अदृष्यार्धगत (लग्न स्पष्ट से 2.3.4.5.6 सप्तम भुक्तांश) ग्रह अप्रत्यक्ष रूप से फल देते हैं।

दृश्यार्ध की सभी राशियाँ उदित रहने से उनमें स्थित ग्रहों का फल प्रभाव जातक पर सीधा पड़ता है अर्थात् उनका प्रभाव विशेष पुष्ट होता है। जबकि अदृश्यभागगत ग्रह अदृश्य रहने से अपना अपेक्षया कम पुष्ट फल देते हैं।

नरकपतनादि योग :–

व्ययस्थानगतो राहुर्भौमार्किरविसंयुतः।
तदीशेऽप्यर्कसंयुक्ते नरके पतनं भवेत्।। 8।।
व्ययस्थानगते सौम्ये तदीशे स्वोच्चराशिगे।
शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे मोक्षः स्यान्नात्र संशयः।। 9।।

यदि द्वादश स्थान में सूर्य, राहु शनि मंगल हो तथा व्ययेश अस्त हो तो मनुष्य नरक में जाता है। अर्थात् पुनर्जन्म लेकर कष्ट भोगता है।

व्ययस्थान में शुभ ग्रह हो, व्ययेश अपनी उच्च राशि में हो तथा शुभ ग्रहों से युक्त दृष्ट हो तो मोक्ष हो जाता है। अर्थात् व्ययेश शुभ ग्रह होकर केवल शुभयुक्त या शुभदृष्ट हो तो भी शुभ होकर पुनर्जन्म में अच्छी स्थिति देता है। द्वादश स्थान से मोक्ष का विचार तथा सर्वविधव्यय का

विचार होता है। कर्मफल का व्यय (समाप्ति) अर्थात् कर्मबन्धन से मोक्ष ही मोक्ष है, तदनुसार द्वादश भाव से मरणोपरान्त स्थिति का विचार युक्त है।

व्ययेशे पापसंयुक्ते व्यये पापसमन्विते।
पापग्रहेण संदृष्टे देशाद्देशान्तरं गतः।। 10।।
व्ययेशे शुभराशिस्थे व्ययर्क्षे शुभसंयुते।
शुभग्रहेण संदृष्टे स्वदेशात् संचरो भवेत्।। 11।।

यदि द्वादशेश पापयुक्त हो और व्यय में पाप दृष्ट पाप ग्रह हो तो मनुष्य एक स्थान से दूसरे स्थान या देशान्तर में घूमता रहता है अर्थात् स्थिर जीवन नहीं बिताता।

यदि द्वादशेश शुभ ग्रह की राशि में गया हो, द्वादश में कोई शुभ ग्रह शुभदृष्ट हो तो अपने देश में ही भ्रमणशील रहता है।

पापकर्म से धनार्जन :–

व्यये मन्दादिसंयुक्ते भूमिजेन समन्विते।
शुभदृष्टे न संप्राप्तिः पापमूलाद्धनार्जनम्।। 12।।
लग्नेशे व्ययराशिस्थे व्ययेशे लग्नसंस्थिते।
भृगुपुत्रेण संयुक्ते धर्ममूलाद्धनव्ययः।। 13।।

यदि द्वादश भाव में शनि, राहु के साथ मंगल हो तथा शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो पापकार्यो से धनलाभ होता है।

यदि लग्नेश द्वादश में व द्वादशेश लग्न में हो, शुक्र से व्ययेश का योग हो तो धार्मिक कार्यो में धन का व्यय होता है।

'धार्मिक कार्यो में धनव्यय तभी होगा जब व्यक्ति बहुत धनी हो तथा वैचारिक स्वच्छता रहे। अतः अप्रत्यक्ष रूप से इस योग में व्यक्ति की सन्मार्ग से आय व सत्कार्यो में धनव्यय बता दिया है। इसी के आधार पर बाद के ग्रन्थकारों (उत्तरकालामृत व भावार्थरत्नाकरादि) ने द्वादश में शुभ राशि (विशेषतया केवल शनि की राशि नवांश को छोड़कर) में स्थित शुक्र का योग या दृष्टि शुभफल व धनप्रद कही है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
व्ययभावफलाध्यायश्चतुर्विंशः।। 24।।

25

।। अथ भावेशफलाध्यायः ।।

लग्नेश का द्वादशभाव फल :–

लग्नेशे लग्नगे देहसुखभाक् शत्रु विक्रमी ।
मनस्वी चंचलश्चैव द्विभार्यः परगोऽपि वा ।। 1 ।।
लग्नेशे धनगो बालो लाभवान् पण्डितः सुखी ।
सुशीलो धर्मविन्मानी बहुदारो गुणैर्युतः ।। 2 ।।
लग्नेशे सहजे जातः सिंहतुल्यपराक्रमी ।
सर्वसम्पद्युतोमानी द्विभार्यो मतिमान् सुखी ।। 3 ।।
लग्नेशे सुखगे बालः पितृमातृसुखान्वितः ।
बहुभ्रातृयुतः कामी गुणरूपसमन्वितः ।। 4 ।।
लग्नेशे सुतगे जन्तोः सुतसौख्यं च मध्यमम् ।
प्रथमापत्यनाशः स्यान् मानी क्रोधी नृपप्रियः ।। 5 ।।
लग्नेशे षष्ठगे जातो देहसौख्यविवर्जितः ।
पापाढ्ये शत्रुतः पीड़ा सौम्यदृष्टिविवर्जितः ।। 6 ।।

(i) लग्नेश लग्न में हो तो मनुष्य शरीर से सुखी, शुभ कार्यो में श्रम करने वाला, खुद्दार, स्वाभिमानी, चंचल विचार वाला, दो पत्नियों वाला, फिर भी परस्त्रीगामी होता है ।

(ii) द्वितीय में लग्नेश रहने से जातक लाभ पाने वाला, विद्वान, सुखी, सुशील, धर्मवेत्ता, मानयुक्त या स्वाभिमानी, अनेक स्त्रियों वाला व गुणी होता है ।

(iii) तृतीयस्थ लग्नेश से सिंहवत् पराक्रमी, सब सम्पत्तियों से युक्त, अभिमानी, दो पत्नियों वाला, बुद्धिमान व सुखी होता है ।

(iv) चतुर्थस्थ लग्नेश से माता–पिता के सुख से युक्त, अनेक भाइयों वाला, कामुक रूपवान्, गुणी होता है ।

(v) लग्नेश पंचम में हो तो मनुष्य को पुत्र का सुख मध्यम सन्तोषजनक होता है, उसकी पहली सन्तान अल्पायु होती है तथा वह मानी, क्रोधी व राजमान्य होता है ।

(vi) षष्ठस्थ लग्नेश से शरीर सुख से रहित, पापयुक्त भी हो तो शत्रुओं से भय व पीड़ा होती है। यदि साथ में शुभ ग्रह हो तो अशुभ फल कम होता है।

लग्नेशे सप्तमे पापे भार्या तस्य न जीवति।
शुभेऽटनो प्रसिद्धो वा विरक्तो वा नृपोऽपि वा।। 7।।
लग्नेशेऽष्टमगे जातः सिद्धविद्याविशारदः।
रोगी चौरो महाक्रोधी द्यूती च परदारगः।। 8।।
लग्नेशे भाग्यगे जातो भाग्यवांजनवल्लभः।
विष्णुभक्तः पटुर्वाग्मी दारपुत्रधनैर्युतः।। 9।।
लग्नेशे दशमे जातः पितृसौख्यसमन्वितः।
नृपमान्यो जने ख्यातः स्वार्जित स्वो न संशय।। 10।।
लग्नेशे लाभगे जातः सदा लाभसमन्वितः।
सुशीलः ख्यातकीर्तिश्च बहुदारगुणैर्युतः।। 11।।
लग्नेशे व्ययभावस्थे देहसौख्यविवर्जितः।
व्यर्थव्ययी महाक्रोधी शुभेक्षितयुते नहि।। 12।।

(i) यदि लग्नेश सप्तम में हो तथा वह पापी ग्रह हो तो भार्या के लिए कष्टकारक है। यदि शुभ लग्नेश सप्तम में हो तो भ्रमणशील या प्रसिद्ध या विरक्त या राजा होता है।

(ii) अष्टम में लग्नेश हो तो मनुष्य की रुचि व कौशल सिद्ध (तन्त्र–मन्त्र जादूगरी अथवा गुप्त विद्या में) होता है। वह प्रायः रोगी या चोर या महा क्रोधी या जुआरी या परस्त्रीगामी होता है।

(iii) नवम में लग्नेश हो तो मनुष्य भाग्यवान्, लोकप्रिय, विष्णुभक्त, पटु, वाग्मी, स्त्री, पुत्र, धन से युक्त होता है।

(iv) यदि लग्नेश दशम में हो तो मनुष्य प्रायः पिता के सुख (सहायता) से वंचित रहता है। वह राजमान्य, प्रसिद्ध, अनेक गुणों व स्त्री सुख युक्त होता है।

(vi) द्वादशस्थ लग्नेश से मनुष्य के शरीर सुख में अल्पता, व्यर्थ खर्च करने वाला, क्रोधी स्वभाव होता है। यदि शुभ ग्रह से युत हो तो उक्त फल नहीं होता।

धनेश फल :–

धनेशे लग्नगे जातः स्वकुटुम्बस्य कण्टकः।
धनवान् निष्ठुरः कामी पुत्रवान् परकार्यकृत्।। 13।।

धनेशे धनगे जातो धनवान् गर्वसंयुतः ।

द्विभार्यो बहुभार्यो वा सुतहीनः प्रजायते ।। 14 ।।

धनेशे सहजे जातो विक्रमी मतिमान् गुणी ।

कामी लोभी शुभाढ्ये च पापाढ्ये देवनिन्दकः ।। 15 ।।

धनेशे सुखभावस्थे सर्वसम्पत् समन्वितः ।

गुरुणा संयुते स्वोच्चे राजतुल्यो नरो भवेत् ।। 16 ।।

धनेशे सुतभावस्थे जातो धनसमन्वितः ।

धनोपार्जनशीलाश्च जायन्ते तत्सुता अपि ।। 17 ।।

धनेशे रिपुभावस्थे सशुभशत्रुतो धनम् ।

सपापे शत्रुतो हानिर्जङ्घावैकल्यवान् भवेत् ।। 18 ।।

(i) लग्नस्थ धनेश से मनुष्य स्वकुटुम्ब से विद्रोह करने वाला, धनी, कठोर हृदय, कामुक, पुत्रवान् तथा दूसरों के काम आने वाला होता है ।

(ii) धनेश धन में ही हो तो मनुष्य गर्वीला, धनी तथा दो या कई पत्नियों वाला (अथवा समयानुसार बड़े परिवार वाला) पुत्रहीन होता है ।

(iii) तृतीयस्थ शुभ धनेश से पराक्रमी, बुद्धिमान्, गुणवान्, कामी, लोभी होता है । यदि पापी धनेश तृतीयस्थ हो तो (देवताओं की) निन्दा करने वाला होता है ।

(iv) चतुर्थ भावस्थ धनेश से सर्वसम्पदाओं का निधान होता है । यदि द्वितीयेश गुरु से युक्त होकर चतुर्थ में उच्चस्थ हो तो मनुष्य राजा के समान होता है ।

(v) द्वितीयेश पंचमस्थ हो तो मनुष्य धनी तथा धनार्जनतत्पर पुत्रों का पिता होता है ।

(vi) धनेश षष्ठ में हो तथा शुभ ग्रह से युक्त हो तो शत्रुओं से धनादि लाभ होता है । यदि पापयुक्त हो तो शत्रुओं से हानि व पिण्डलियों में थोड़ी विकलता (यथासम्भव कमजोरी, पतलापन आदि) होती है ।

धनेशे सप्तमे वैद्यः परदाररतः पुमान् ।

पापेक्षितयुते तस्य भार्या स्याद् व्यभिचारिणी ।। 19 ।।

धनेशेऽष्टमगे जातो भूरि भूमिधनैर्युतः ।

पत्नीसुखं भवेत्स्वल्पं ज्येष्ठभ्रातृसुखं न हि ।। 20 ।।

धनेशे धर्मगे तीर्थव्रतधर्मरतः पटुः ।

बाल्ये रोगी सुखी पश्चाद् धनवानुद्यमी सदा ।। 21 ।।

धनेशे कर्मगे जातः कामी मानी च पण्डितः ।

बहुदारधनैर्युक्तः किंच पुत्रसुखोज्झितः ।। 22 ।।

धनेशे लाभभावस्थे सर्वलाभसमन्वितः ।

सदोद्योगयुतो मानी कीर्तिमान् जायते नरः ।। 23 ।।

व्ययगे धनभावेशे साहसी धनवर्जितः ।

जीविका नृपसान्निध्याज्ज्येष्ठापत्यसुखं न हि ।। 24 ।।

(i) यदि धनेश सप्तम में पाप ग्रह से युत दृष्ट हो तो पत्नी व्यभिचारिणी होती है । स्वयं पुरुष भी परस्त्रीरत होता है । प्रायः वैद्यक में रुचि होती है । यदि शुभ युक्त दृष्ट हो तो व्यभिचारादि फल नहीं होता ।

(ii) अष्टमस्थ धनेश से मनुष्य बहुत धनसम्पत्ति वाला, पत्नी सुख कम पाने वाला तथा बड़े भाई के सुख से रहित होता है ।

(iii) नवमस्थ धनेश से तीर्थ, व्रत, धर्म में रत, कार्य–पटु, बचपन में रोगी, बाद में सुखी तथा सदैव परिश्रम, प्रयत्न करने वाला, धनी होता है ।

(iv) धनेश दशमस्थ हो तो मनुष्य कामी, स्वाभिमानी, विद्वान्, बहुत धनी, बड़े परिवार वाला, लेकिन पुत्र सुख में कमी पाने वाला होता है ।

(v) एकादशस्थ धनेश से सभी लाभ पाने वाला, सदैव परिश्रम शील, मानी कीर्ति युक्त होता है ।

(vi) व्ययस्थ धनेश से साहसी, धनहीन, राजा के निकट से रोजगार कमाने वाला बड़े पुत्र के सुख से रहित होता है ।

तृतीयेश भाव फल :–

तृतीयेशे विलग्नस्थे स्वभुजार्जितवित्तवान् ।

सेवाज्ञः साहसी जातो विद्याहीनोऽपि बुद्धिमान् ।। 25 ।।

द्वितीये सहजाधीशे गुदाभंजनिको गुरुः ।

स्वल्पारम्भी सुखी न स्यात् परस्त्रीधनलोलुपः ।। 26 ।।

तृतीयेशे तृतीयस्थे भ्रातृपुत्रसुखान्वितः ।

धनयुक्तो महाहृष्टो भुनक्ति सुखमद्भुतम् ।। 27 ।।

तृतीयेशे सुखे कर्मे पंचमे वा सुखी नरः ।

क्रूरस्त्रीको धनाढ्यश्च मतिमान् पुत्रसंयुतः ।। 28 ।।

षष्ठभावे तृतीयेशे भ्रातृशत्रुर्महाधनी ।

मातुलैश्च समं वैरं मातुलानीप्रियो नरः ।। 29 ।।

तृतीयेशेऽष्टमे द्यूने राजसेवारतो मृतः ।
दासो वा शैशवे दुःखी चौरो वा जायते नरः ।। 30 ।।
नवमे सहजाधीशे पितुः सुखविवर्जितः ।
स्त्रीभिर्भाग्योदयस्तस्य पुत्रादि सुख संगतः ।। 31 ।।
लाभगे सहजेशे तु व्यापारे लाभवान् सदा ।
विद्याहीनोऽपि मेधावी साहसी परसेवकः ।। 32 ।।
व्ययस्थे सहजाधीशे कुकार्ये व्ययकृज्जनः ।
पिता तस्य भवेत् क्रूरः स्त्रीभिर्भाग्योदयी सदा ।। 33 ।।

(i) लग्नस्थ तृतीयेश से मनुष्य अपनी शक्ति से धन कमाने वाला, सेवाचतुर, साहसी, विद्याहीन होते हुए भी बुद्धिमान् होता है।

(ii) द्वितीयस्थ तृतीयेश से मनुष्य गुदामैथुन करने वाला, मोटा, छोटी शुरूआत करने वाला, सुख से रहित, दूसरों की नारी व धन की कामना करने वाला होता है।

(iii) तृतीयस्थ तृतीयेश से भाई, पुत्रादि से संयुक्त, धनी, प्रसन्नचित्त, विविध सुखों को भोगने वाला होता है।

यहाँ 'भुनक्ति' शब्द को आर्ष प्रयोग मानना चाहिए। अन्यथा 'भुङ्क्ते पाठ ठीक था।

(iv) यदि तृतीयेश 4.5.10 भाव में हो तो मनुष्य सुखी, धनी, बुद्धिमान्, पुत्रवान् लेकिन क्रूर स्त्री वाला होता है।

(v) षष्ठस्थ तृतीयेश से भाइयों से वैर, महाधनी, मामाओं से शत्रुता व मामी से प्यार रहता है।

(vi) तृतीयेश 7.8 में हो तो मनुष्य राजकीय सेवा करने वाला, राजसेवा में ही मरने वाला, दास, बचपन में सुखी या चोर होता है।

(vii) नवमस्थ तृतीयेश से पिता के सुख से रहित, स्त्री के कारण भाग्योदय पाने वाला, पुत्रादि के सुख से युक्त होता है।

(viii) तृतीयेश एकादश भाव में हो तो व्यापार में सदा लाभ कमाने वाला, कम पढ़ा-लिखा होते हुए भी बुद्धिमान्, साहसी व परायों के काम आने वाला होता है।

(ix) व्ययस्थ तृतीयेश से कुकार्यों में धन व्यय करने वाला, क्रूर पिता का पुत्र तथा स्त्री के कारण भाग्योदयी होता है।

चतुर्थेश फल :-

सुखेशे लग्नगे जातो विद्यागुण विभूषितः ।
भूमिवाहन संयुक्तो मातुः सुखसमन्वितः ।। 34 ।।

सुखेशे धनभावस्थे भोगी सर्वधनान्वितः ।
कुटुम्बसहितो मानी साहसी कुहुकान्वितः ।। 35 ।।
सुखेशे सहजस्थे च विक्रमी भृत्यसंयुतः ।
उदारो गुणवान्दाता धनवान् नित्यरोगवान् ।। 36 ।।
सुखेशे सुखगे नित्यं मानी सर्वधनान्वितः ।
चतुरः शीलवान् मन्त्री ज्ञानी सौख्यसमन्वितः ।। 37 ।।
तुर्येशे पंचमे भाग्ये सुखी सर्वजनप्रियः ।
देवभक्तिरतोमानी सद्गुणवित्तसंयुतः ।। 38 ।।
सुखेशे शत्रुभावस्थे मातुः सौख्यविवर्जितः ।
क्रोधी चौरोऽभिचारी च कामचारी च दुर्मनाः ।। 39 ।।
सुखेशे सप्तमे बालो बहुविद्यासमन्वितः ।
पित्रार्जित धन त्यागी सभायां मूकवद्भवेत् ।। 40 ।।

(i) सुखेश लग्न में हो तो मानव विद्यावान्, गुणी, जमीन जायदाद वाला, वाहनयुक्त, माता का सुख पाने वाला होता है ।

(ii) द्वितीयस्थ चतुर्थेश से मनुष्य भोग भोगने वाला, सब प्रकार के धनों (पुत्र धन, यशोधन, सुखधन, संचित धन, पशु धन वाहन, भूमि धन आदि), कुटुम्ब वाला, मानवान्, साहसी, लेकिन मायावी या दिखावा करने वाला होता है ।

(iii) तृतीयस्थ चतुर्थेश से मनुष्य पराक्रमी, नौकर–चाकरों वाला, उदार, गुणवान्, दाता, धनी, लेकिन सदैव किसी न किसी रोग से पीड़ित रहता है ।

(iv) चतुर्थ में चतुर्थेश हो तो मनुष्य मानी, सब धन से युक्त, चतुर, चरित्रवान, अच्छा सलाहकार, ज्ञानी व सुखी होता है ।

(v) चतुर्थेश 5.9 में हो तो सुखी, लोकप्रिय, देवताओं में भक्ति रखने वाला, स्वाभिमानी, अच्छे गुणों व धन से युक्त होता है ।

(vi) चतुर्थेश षष्ठ में हो तो माता के सुख से रहित, क्रोधी, चोर, तान्त्रिक, दूषित क्रियाएँ (मारणादि) करने वाला, स्वेच्छाचारी व दुर्विचार वाला होता है ।

(vii) चतुर्थेश सप्तम में हो तो मनुष्य बहुत विद्यावान, पिता के धन का स्वेच्छा से त्याग करने वाला, सभा में बहुत कम बोलने वाला होता है ।

सुखेशे व्ययरन्ध्रस्थे गृहादिसुखवर्जितः ।
पित्रोः सुखं भवेत्स्वल्पं जातः क्लीबसमो भवेत् । । 41 । ।
सुखेशे कर्मभावस्थे राजमान्यः सुखी नरः ।
रसायनी महाहृष्टो भोगी च विजितेन्द्रियः । । 42 । ।
सुखेशे लाभगे जातो नित्यरोगभयान्वितः ।
उदारश्च गुणज्ञश्च दाता स्वार्जितवित्तवान् । । 43 । ।

(i) चतुर्थेश 8.12 में हो तो मनुष्य घर अर्थात् आवास के सुख से रहित होता है । माता–पिता का कम सुख पाने वाला तथा रतिक्रिया में निर्बल होता है ।

(ii) चतुर्थेश दशम भाव में हो तो मनुष्य राजमान्य, सुखी, रसायन (कायाकल्प की विशेष पुष्टिकारक दवाएँ) जानने वाला अथवा रसायन से सदैव जवान रहने वाला, बहुत प्रसन्नचित्त, भोगवान लेकिन जितेन्द्रिय होता है ।

(iii) चतुर्थेश यदि एकादश स्थान में हो तो मनुष्य सदैव रोग के भय से पीड़ित, उदार, गुणवान, गुणज्ञ, दानी तथा स्वपरिश्रम से धनी होता है ।

पंचमेश फल :–

सुतेशे लग्नगे जातो विद्वान् पुत्रसुखान्वितः ।
कदर्योवक्रचित्तश्चद्रव्यसंग्रहतत्परः । ।44 । ।
सुतेशे धनभावस्थे बहुपुत्रो धनान्वितः ।
कुटुम्बपोषको मानी लोकवल्लभ्यसंयुतः । । 45 । ।
सुतेशे सहजस्थे तु जायते सोदरप्रियः ।
मायापरो द्विजिह्वश्च स्वकार्यनिरतः सदाः । । 46 । ।
सुतेशे मातृभवने चिरमातृसुखी धनी ।
लक्ष्मीयुक्तः सुबुद्धिश्च सचिवोऽप्यथवा गुरुः । । 47 । ।
सुतेशः पंचमे यस्य तस्य पुत्रा भवन्ति हि ।
क्षणिकः क्रूरभाषी च धार्मिको मतिमान् भवेत् । । 48 । ।

(i) पंचमेश लग्न में हो तो मनुष्य विद्वान्, पुत्रवान्, कुटिल, स्वार्थी, होता है । सदैव धनसंग्रह में लगा रहता है ।

(ii) पंचमेश द्वितीय में हो तो अनेक पुत्रों वाला, धनी, बड़े परिवार का पालन करने वाला, स्वाभिमानी, लोकप्रिय होता है।

(iii) पंचमेश तृतीय में हो तो मनुष्य भाई का प्यारा, मायावी, चुगलखोर, सदैव स्वार्थसिद्धि में लगा रहने वाला होता है।

(iv) पंचमेश चतुर्थ में हो तो लम्बे समय तक माता का सुख पाने वाला, धनी, लक्ष्मीयुक्त, सुबुद्धि, मन्त्री या गुरु होता है।

(v) पंचम में पंचमेश रहने से कई पुत्र होते हैं। ऐसा व्यक्ति क्षण में रुष्ट व क्षण में तुष्ट, कठोरभाषी, धार्मिक व बुद्धिमान् होता है।

सुतेशे रिपुभावस्थे पुत्रः शत्रुसमो भवेत्।
मृतपुत्रो ग्राह्यपुत्रो धनपुत्रोऽथवा भवेत्।। 49।।
सुतेशे कामगे मानी सर्वधर्मसमन्वितः।
तुंगयष्टिः सुपुत्रश्च तेजस्वी भक्तिमान् नरः।। 50।।
सुतेशे रन्ध्रगे जातः स्वल्पपुत्रसुखान्वितः।
कासश्वासी च क्रोधी च, विषवैद्यो धनान्वितः।। 51।।
सुतेशे नवमे पुत्रो भूपो वा भूपसन्निभः।
स्वयं वा ग्रन्थकर्ता च पुत्रः स्यात्कुलदीपकः।। 52।।
दशमस्थे सुतेशे च राजयोगी ससन्ततिः।
अनेक सुखभोगी स्यात् विख्यातो भुवि मानवः।। 53।।
सुतेशे भवभावस्थे पण्डितो जनवल्लभः।
ग्रन्थकर्ता महादक्षो बहुपुत्रधनान्वितः।। 54।।
व्ययगे पंचमाधीशे जातः पुत्र सुखोज्झितः।
शुभे शुभश्च संयुक्ते भक्तिमान् अल्पपुत्रवान्।। 55।।

(i) यदि पंचमेश सप्तम भाव में हो तो मनुष्य स्वाभिमानी, धार्मिक विचारों वाला, धर्मपालक, मजबूत शरीर वाला, सुपुत्रवान्, तेजस्वी व भक्तिमान् होता है।

(ii) यदि पंचमेश अष्टम में हो तो पुत्र सुख में अल्पता, खाँसी या श्वास रोग, क्रोध, रासायनिक चिकित्सक (डॉक्टर) व धनी होता है।

(iii) यदि पंचमेश नवम में हो तो पुत्र राजा या राजतुल्य होता है। अथवा व्यक्ति स्वयं ग्रन्थकार तथा उसका पुत्र कुलदीपक होता है।

(iv) पंचमेश दशम में हो तो मनुष्य को राजयोग व सन्तान सुख होता है। वह अनेक सुख भोगने वाला, प्रसिद्ध होता है।

(v) पंचमेश एकादश भाव में हो तो मनुष्य विद्वान्, लोकप्रिय, ग्रन्थकर्त्ता, अति दक्ष एवं बहुत पुत्रों वाला व धनी होता है।

(vi) पंचमेश द्वादशस्थ हो तो मनुष्य को पुत्र या सन्तान का सुख नहीं होता है। यदि शुभ पंचमेश हो या शुभ युक्त हो तो भक्तिमान् व पुत्रवान् होता है।

षष्ठेश भाव फल :–

षष्ठेशे लग्नगे जातो रोगवान् कीर्तिसंयुक्तः।
आत्मशत्रुर्धनी मानी साहसी गुणवान् नरः।। 56।।
षष्ठेशे धनभावस्थे साहसी कुलविश्रुतः।
परदेशी, सुखी, वक्ता स्वकर्मनिरतः सदा।। 57।।
षष्ठेशे सहजक्षेत्रस्थे क्रोधी संरक्तलोचनः।
भ्राता शत्रुसमस्तस्य भृत्यश्चोत्तरदायकः।। 58।।
षष्ठेशे सुखभावस्थे मातुरल्पसुखं भवेत्।
मनस्वी पिशुन द्वेषी चलचित्तोऽतिवित्तवान्।। 59।।
सुतंगः षष्ठभावेशः चलं तस्य धनादिकम्।
दयायुक्तः सुखी, सौम्यः स्वकार्ये चतुरो महान्।। 60।।
षष्ठगे षष्ठभावेशे बन्धुभिः शत्रुता भवेत्।
परैर्मैत्री सुखं मध्यं धनं मानो धनो भवेत्।। 61।।

(i) षष्ठेश लग्न में हो तो रोगी, ख्यातनामा, स्वयं अपनी हानि करने वाला, धनी, स्वाभिमानी, साहसी व गुणी होता है।

(ii) षष्ठेश द्वितीय में हो तो साहसी, अपने कुल में अग्रगण्य, परदेश में वास करने वाला, सुखी, उत्तम वक्ता, सदैव कार्यरत रहता है।

(iii) षष्ठेश तृतीय में हो तो मनुष्य क्रोधी, लाल आँखों वाला, लेकिन अप्रतापी, नौकरों को भी वश में न रख सकने वाला, भाई भी शत्रु के समान होता है।

(iv) षष्ठेश चतुर्थ में हो तो माता का सुख कम, स्वाभिमान की अधिकता, चुगलखोर, द्वेषभाव रखने वाला, चंचल मन वाला, अति धनी होता है।

(v) षष्ठेश पंचम में हो तो उसका धन चंचल होता है। वह दया युक्त, सुखी, सौम्य स्वभाव वाला, अपने कार्य में अति चतुर होता है।

(vi) षष्ठेश षष्ठ में हो तो अपने ही बन्धुओं से शत्रुता होती है। दूसरों से मैत्री भाव, सुख मध्यम, धन व घमंड अधिक होता है।

षष्ठेशे दारभावस्थे जातो दारसुखोज्झितः।
कीर्तिमान् गुणवान् मानी साहसी धनसंयुतः।। 62।।
षष्ठेशेऽष्टमगे जातो रोगी शत्रुर्मनीषिणाम्।
परद्रव्याभिलाषी च परदाररतोऽशुचिः।।63।।
नवमे रिपुभावेशः काष्ठपाषाणविक्रयी।
व्यवहारे क्वचिद् हानिः क्वचिद् वृद्धिश्च जायते।। 64।।
षष्ठेशे दशमस्थे तु साहसी कुलविश्रुतः।
अभक्तश्च पितुर्वक्ता विदेशे च सुखी भवेत्।। 65।।
षष्ठेशे लाभभावस्थे नरः कीर्तियुतो भवेत्।
गुणवान् मानवान् वीरः किन्तु पुत्रसुखोज्झितः।। 66।।
द्वादशे रिपुभावेशे व्यसनी हिंसको नरः।
अथवा शुभ युते दृष्टे सुखी भोगी न संशयः।। 67।।

(i) षष्ठेश सप्तम में हो तो पुरुष को स्त्री का सुख कम होता हे। लेकिन विख्यात, गुणी, मानी; साहसी, व धनी होता है।

(ii) षष्ठेश यदि अष्टम में हो तो मनुष्य रोगी, विद्वानों का शत्रु, दूसरों के धन की कामना करने वाला, परस्त्री–लोलुप, अपवित्र होता है।

(iii) यदि षष्ठेश नवम में हो तो लकड़ी व पत्थर का व्यापार करने वाला, व्यापार में कहीं हानि व कहीं बहुत वृद्धि पाने वाला होता है।

(iv) षष्ठेश दशम में हो तो मनुष्य साहसी, कुलप्रसिद्ध, पिता का विशेष आदर न करने वाला, अच्छा वक्ता व विदेश में सुखी होता है।

(v) षष्ठेश एकादश में हो तो मनुष्य कीर्तिमान्, गुणवान्, मानवान्, साहसी, किन्तु पुत्रसुख से रहित होता है।

(vi) द्वादशस्थ षष्ठेश से मनुष्य व्यसनी, हिंसक व आक्रामक स्वभाव वाला होता है। यदि शुभदृष्टयुक्त हो तो सुखी व भोगी होता है।

सप्तमेश का भावफल :–

दारेशे तनुभावस्थे परदारेषु लम्पटः ।
दुष्टो विचक्षणोऽधीरो जनो वातरुजान्वितः ।। 68 ।।
दारेशे धनभावस्थे बहुस्त्रीभिः समादृतः ।
दारयोगाद्धनाप्तिश्च दीर्घसूत्री च मानवः ।। 69 ।।
सप्तमेशे तृतीयस्थे दारसौख्यविवर्जितः ।
यत्नात् पुत्रवान् जातो मृतापत्योऽल्पसन्ततिः ।। 70 ।।
दारेशे सुखभावस्थे जाया तस्य न वशे सदा ।
स्वयं सत्यप्रियो धीमान् धर्मात्मा दन्तरोगयुक् ।। 71 ।।
दारेशे पंचमे जातो मानी सर्वगुणान्वितः ।
सर्वदा हर्षयुक्तश्च तथा सर्वधनाधिपः ।। 72 ।।
रिपुभावगते स्त्रीशे भार्या तस्य रुजान्विता ।
स्त्रिया सहाथवा वैरं स्वयं क्रोधी सुखोज्झितः ।। 73 ।।

(i) सप्तमेश लग्न में हो तो परस्त्रीगामी, दुष्ट, तीव्रबुद्धि, अधैर्यशाली, वातरोगी होता है ।

(ii) सप्तमेश द्वितीय में हो तो अनेक स्त्रियों का मानभाजन, स्त्री सम्पर्क से धन पाने वाला, देर तक सोने वाला होता है ।

(iii) सप्तमेश तृतीय में हो तो मनुष्य स्त्री सुख में कमी पाने वाला होता है । प्रायः उसके पुत्र यत्नपूर्वक जीवित रहते हैं । एवं अल्पसन्तान होती है ।

(iv) सप्तमेश चतुर्थ में हो तो उसकी पत्नी वश में नहीं होती अर्थात् स्वेच्छाचारिणी होती है । व्यक्ति स्वयं सत्यप्रिय, बुद्धिमान्, धर्मात्मा, लेकिन दाँतों का रोगी होता है ।

(v) सप्तमेश यदि पंचम भाव में हो तो स्वाभिमानी, सब प्रकार से सम्पन्न, गुणवान् व सदैव हर्षयुक्त रहता है ।

(vi) सप्तमेश षष्ठ में हो तो उसकी पत्नी रोगयुक्त होती है अथवा स्त्री के साथ वैर होता है । वह स्वयं क्रोधी व सुखरहित होता है ।

दारेशे सप्तमे भावे जातो दारसुखान्वितः ।
धीरो विचक्षणो धीमान् केवलं हृदि रोगवान् ।। 74 ।।

सप्तमेशे तु रन्ध्रस्थे नरो दारसुखोज्झितः ।
नारी रोगयुता वापि दुःशीला न वशानुगा ।। 75 ।।
दारेशे धर्मभावस्थे नानास्त्रीभिः समन्वितः ।
जायाहृन्मना जातो बह्वारम्भकरो नरः ।। 76 ।।
दारेशे कर्मभावस्थे नास्य जायावशानुगा ।
स्वयं धर्मरतो जातो धनपुत्रादिसंयुतः ।। 77 ।।
सप्तमेशे भवस्थे तु दारैरर्थसमागमः ।
पुत्रादिसुखमल्पं च जनः कन्याप्रजो भवेत् ।। 78 ।।
द्वादशे सप्तमाधीशे दरिद्रः कृपणो महान् ।
वस्त्राजीवी भवेज्जातः भार्या रम्या व्ययप्रिया ।। 79 ।।

(i) सप्तमेश सप्तम में हो तो मनुष्य स्त्री सुख पाने वाला, धैर्यशील, तीव्र बुद्धि, कामी, हृदयरोगी होता है ।

(ii) सप्तमेश अष्टम में हो तो स्त्री सुख से रहित, अथवा रोगिणी अथवा स्वच्छन्द अथवा दुश्चरित्रा होती है ।

(iii) सप्तमेश नवम में हो तो अनेक स्त्रियों के सम्पर्क वाला, (कदाचित् स्त्रीजनों से लाभ योग है) स्त्री द्वारा दिल हार जाने वाला, बड़ा कार्य करने वाला होता है ।

(iv) सप्तमेश दशम में हो तो उसकी पत्नी वश में नहीं रहती, लेकिन व्यक्ति स्वयं धर्मपरायण, धन व पुत्रादि से युक्त रहता है ।

(v) सप्तमेश यदि एकादश में हो तो स्त्री व धन का लाभ होता है, पुत्र सुख में कमी व कन्याओं की अधिकता होती है ।

(vi) यदि सप्तमेश द्वादश में हो तो मनुष्य दरिद्र अर्थात् मैला–कुचैला रहने वाला, कंजूस, कपड़े से रोजगार कमाने वाला, सुन्दर तथा खर्चीले स्वभाव की पत्नी वाला होता है ।

अष्टमेश भावफल :–

अष्टमेशे तनौ याते तनुसौख्यविवर्जितः ।
देवनिन्दापरो नित्यं व्रणरोगी भवेत्पुमान् ।। 80 ।।
अष्टमेशे धने बाहुबलहीनः प्रजायते ।
धनं तस्य भवेत्स्वल्पं नष्टं वित्तं न लभ्यते ।। 81 ।।
सहजे रन्ध्रभावेशे भ्रातृसौख्यं न जायते ।
सालस्यो भृत्यहीनश्च जायते बलवर्जितः ।। 82 ।।

रन्ध्रेशे सुखभावस्थे मातृहीनो भवेच्छिशुः ।
गृहभूमिसुखैर्हीनो मित्रद्रोही न संशयः ।। 83 ।।
रन्ध्रेशे सुतभावस्थे जडबुद्धिः प्रजायते ।
स्वल्पप्रज्ञोभवेज्जातो दीर्घायुश्च धनान्वितः ।। 84 ।।
रन्ध्रेशे रिपुभावस्थे शत्रुजेता प्रभंजनः ।
रोगी सर्प जलाद्घातो बाल्ये तस्य प्रजायते ।। 85 ।।
रन्ध्रेशेसप्तमस्थे तु तस्यभार्याद्वयं भवेत् ।
व्यापारे च भवेद्हानिस्तस्मिन् पापयुते ध्रुवम् ।। 86 ।।
रन्ध्रेशे मृत्युभावस्थे जातो दीर्घायुषा युतः ।
द्यूटी चौरोऽन्यथावादी पापी चेद् गुरुनिन्दकः ।। 87 ।।

(i) अष्टमेश लग्न में हो तो शरीर के सुख में कमी, देवताओं की निन्दा करने का स्वभाव, सदैव शरीर पर घाव लगने के योग होते हैं ।

(ii) धनभाव में अष्टमेश हो तो मनुष्य अपने बाहुबल से रहित, कम धनी तथा डूबते धन वाला होता है । उसका गया धन प्रायः नहीं लौटता है ।

(iii) तृतीय में अष्टमेश हो तो भाई का सुख नहीं होता । वह आलसी, सेवकों से रहित, तथा बलहीन होता है ।

(iv) चतुर्थ में अष्टमेश हो तो मनुष्य माता से रहित, घर, भूमि व जायदाद के सुख से वंचित, मित्रद्रोही होता है ।

(v) अष्टमेश पंचम में हो तो जड़बुद्धि, कम प्रज्ञा वाला, धनी व दीर्घायु होता है ।

(vi) षष्ठ में अष्टमेश हो तो मनुष्य शत्रुओं को जीतने वाला, दबंग, रोगी, सर्प व जल से घात पाने वाला होता है ।

(vii) अष्टमेश सप्तम में हो तो उसकी दो पत्नियाँ होती हैं । उसे व्यापार में हानि होती है । यदि वह अष्टमेश पापयुक्त हो तो विशेष हानि होती है ।

(viii) अष्टमेश अष्टम में ही हो तो मनुष्य दीर्घायु, जुआ खेलने वाला, चोर या व्यर्थ बोलने वाला, पापी या गुरुओं की निन्दा करने वाला होता है ।

अष्टमेशे तपःस्थाने महापापी च नास्तिकः ।
दुष्टभार्यापतिश्चैव परद्रव्यापहारकः ।।88 ।।
रन्ध्रेशे तु दशमस्थे पितृसौख्यविवर्जितः ।।
पिशुनः कर्महीनश्च यदि नैव शुभेक्षिते ।। 89 ।।
रन्ध्रेशो लाभभावस्थे सपापे धनवर्जितः ।
बाल्ये दुःखी सुखी पश्चात् दीर्घायुश्च शुभान्विते ।। 90 ।।
व्ययस्थेऽष्टमभावेशे कुकार्यो व्ययकृत् सदा ।
अल्पायुश्च भवेज्जातः सपापे च विशेषतः ।। 91 ।।

(i) यदि अष्टमेश नवमस्थान में हो तो महापापी, नास्तिक, दुष्ट पत्नी वाला तथा दूसरों का धन लेने वाला होता है ।

(ii) अष्टमेश दशम में हो तो पिता के सुख से रहित, चुगलखोर, कर्महीन होता है, यदि वह शुभयुक्त दृष्ट हो तो उक्त फल कम होता है ।

(iii) अष्टमेश एकादश स्थान में हो तथा वह पापयुक्त हो तो विशेषतया निर्धन, बचपन में दुःखी बाद में सुखी व दीर्घायु होता है । शुभयुक्त होने पर अशुभ फल में कमी होती है ।

(iv) अष्टमेश व्ययभाव में हो तो कुकार्यो में व्यय करने वाला, अल्पायु होता है । पापयुक्त होने पर यह फल अधिक होता है ।

नवमेश भाव फल :–

भाग्येशे लग्नगे जातो भाग्यवान् भूपवन्दितः ।
सुशीलः सौम्यरूपश्च विद्यावान् जनपूजितः ।।92 ।।
भाग्येशे धनभावस्थे पण्डितो जनवल्लभः ।
जायते धनवान् कामी स्त्रीपुत्रादिसुखान्वितः ।। 93 ।।
भाग्येशे भ्रातृभावस्थे जातो भ्रातृसुखान्वितः ।
धनवान्विक्रमीरूपगुणशीलसमन्वितः ।।94 ।।
भाग्येशे तुर्यभावस्थे गृहयानसुखान्वितः ।
पुण्यवान् सुयशो वाग्मी साहसी जनपूजितः ।। 95 ।।
भाग्येशे पंचमस्थे तु भाग्यवान् पुत्रवान् नरः ।
गुरुभक्तिरतो मानी धर्मात्मा पण्डितो गुणी ।। 96 ।।
भाग्येशे रिपुभावस्थे स्वल्पभाग्यो भवेन्नरः ।
मातुलादिसुखैर्हीनः शत्रुभिर्पीडितः सदा ।। 97 ।।

भाग्येशे मदभावस्थे दारयोगात् सुखोदयः ।
गुणवान् कीर्तिमान् कामी कार्यबाधा क्वचिद् भवेत् ।। 98 ।।
भाग्येशे मृत्युभावस्थे भाग्यहीनो नरो भवेत् ।
ज्येष्ठभ्रातृ सुखैर्हीनः पीडितो भाग्यलीलया ।। 99 ।।

(i) यदि नवमेश लग्न में हो तो मनुष्य भाग्यवान, राजमान्य, सुशील, सौम्य व्यक्तित्व वाला, विद्यावान् व जनपूजित होता है ।

(ii) भाग्येश द्वितीय में हो तो पण्डित, जनप्रिय, धनवान्, कामी, स्त्री व पुत्रादि के सुख से युक्त होता है ।

(iii) भाग्येश तृतीय स्थान में हो तो भाई के सुख से युक्त, धनवान्, पराक्रमी, रूप, गुण व शील से युक्त होता है ।

(iv) भाग्येश चतुर्थ में हो तो मनुष्य घर व वाहन के सुख से युक्त, पुण्यवान्, वाक्चतुर, यशस्वी, लोकमान्य व साहसी होता है ।

(v) पंचमस्थ भाग्येश से भाग्यवान्, पुत्रवान्, गुरुभक्ति में रत, मानी, धर्मात्मा, पण्डित व गुणवान् होता है ।

(vi) भाग्येश षष्ठभाव में हो तो कम भाग्य वाला, मामा के सुख से रहित, शत्रु पीड़ित होता है ।

(vii) भाग्येश सप्तम भाव में हो तो स्त्री सम्पर्क से भाग्योदय पाने वाला, गुणवान्, कीर्तिमान, कामुक लेकिन कहीं--कहीं बाधित सफलता वाला होता है ।

(viii) अष्टमस्थ भाग्येश से मनुष्य भाग्यहीन होता है । बड़े भाई के सुख से रहित तथा भाग्य की लीलाओं से विशेष सन्तप्त होता है ।

भाग्येशे भाग्यभावस्थे बहुभाग्यसमन्वितः ।
गुणसौन्दर्यसम्पन्नः भ्रातृसौख्यं भवेद्बहु ।। 100 ।।
भाग्येशे कर्मभावस्थे मन्त्री सेनापतिनृपः ।
बलाबलविवेकेन गुणवान् अथ पूजितः ।। 101 ।।
भाग्येशे लाभभावस्थे धनलाभो दिने दिने ।
गुरुभक्तिरतः मानी गुणवान् पुण्यसंचयी ।। 102 ।।
धर्मेशे व्ययभावस्थे भाग्यहानिर्भवेद् ध्रुवम् ।
सविशेषात्तुलायां तु व्ययी ह्यतिथि संगमात् ।। 103 ।।

(i) भाग्येश नवम में हो तो मनुष्य बहुत अधिक भाग्यशाली, गुणी, सुन्दर, भाइयों से युक्त होता है ।

(ii) भाग्येश दशम में हो तो बलाबल के तारतम्य से सेनापति, मन्त्री या राजा होता है । अपि च गुणी एवं पूजनीय भी होता है ।

(iii) भाग्येश एकादश स्थान में हो तो प्रतिदिन लाभ होता रहता है । वह गुरुभक्त, स्नेहिल हृदय वाला, स्वाभिमानी, गुणी, पुण्य कमाने वाला होता है ।

(iv) नवमेश द्वादश में हो तो भाग्य की हानि निश्चय से होती है । यदि द्वादश में नवमेश तुला में हो (वृश्चिक लग्न में द्वादशस्थ चन्द्र) तो विशेषतया भाग्यहीन होता है । ऐसे व्यक्ति का अधिक धन अतिथिसत्कार में खर्च होता है ।

भावफल में तारतम्य :–

इति ते कथितं विप्र ! भावेशानां च यत्फलम् ।
बलाबलविवेकेन सर्वेषां तत् समादिशेत् ।। 104 ।।
द्विराशीशस्य खेटस्य विदित्वोभयथा फलम् ।
विरोधे तुल्यफलयोर्द्वयोर्नाशः प्रजायते ।। 105 ।।
विभिन्नयोस्तु फलयोर्द्वयोः प्राप्तिभवेद् ध्रुवम् ।
ग्रहे पूर्णबले पूर्णमर्धमर्धफले फलम् ।। 106 ।।
पादं हीनबले खेटे ज्ञेयमित्थं बुधैरिति ।
उक्तं भावस्थितानां ते भावेशानां फलं मया ।। 107 ।।

इस प्रकार मैंने भावेशों का जो फल कहा है, उसकी प्राप्ति बलाबल के आधार पर कहनी चहिए ।

यदि कोई ग्रह दो राशियों का स्वामी हो तो उसके दोनों भावों के अनुसार फल जानकर निश्चय करना चाहिए । यदि दोनों प्रकार से विरोधी फल मिलें तो दोनों ही फलों का नाश हो जाता है ।

यदि दोनों प्रकार से फल अलग-अलग आए तो वह शुभाशुभ जैसा भी हो, उन दोनों ही फलों की प्राप्ति होती है । यदि ग्रह पूर्ण बली हो तो उसका भावफल पूरा तथा आधा बली होने पर आधा ही फल मिलता है ।

यदि ग्रह अल्पबली हो तो चौथाई फल समझना चाहिए तथा निर्बल ग्रह का फल शुभाशुभ जैसा भी हो, वह नहीं मिलता। इस प्रकार भावेशों की भिन्न भावस्थितियों के अनुसार फल कहना चाहिए।

उदाहरणार्थ हमारे क्रमिक उदाहरण में बृहस्पति 6.9 भावेश होकर द्वितीय में है तथा मंगल 5.10 भावेश होकर पंचम में है। षष्ठेश द्वितीय में हो तो मनुष्य साहसी, कुलमुख्य, परदेशी, सुखी तथा कार्यमग्न होता है तथा नवमेश द्वितीय में हो तो मनुष्य पण्डित, जनप्रिय, धनी सुखी होता है। इन फलों में धनी, सुखी होना सामान्य फल है। इनमें कोई विरोध नहीं है। अतः यह फल मिलेगा। इसी तरह पंचमेश पंचम में रहने पर पापयुक्त रहने से सन्तानहीन तथा दशमेश पंचम में होने से पुत्रवान, धनी होता है। अतः सन्तान की सामान्य संख्या होती है। वराहमिहिर ने इस सिद्धान्त का समर्थन बृहज्जातक में भी किया है।

वराहमिहिरानुसार भी एक ग्रह किसी विधि से यदि धनप्रद तथा अन्यविधि से धननाशक हो तो न धन–लाभ, न धन–हानि, कुछ, भी नहीं होती। यदि कोई ग्रह अधिक बली होकर एक प्रकार से राजयोग कारक, दूसरे प्रकार से सामान्य योग कारक हो तो अधिक फल की प्राप्ति होगी। (देखें बृहज्जातक, दशान्तर्दशा 23)।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां भावेश–
फलाध्यायः पंचविंशः ।। 25 ।।

26

।। अथाप्रकाशग्रहफलाध्यायः ।।

धूम का भावफलः–

शूरो विमल नेत्रांशः सुस्तब्धो निर्घृणः खलः ।
मूर्तिस्थे धूमसंज्ञे च गाढरोषो भवेन्नरः ।। 1 ।।
रोगी धनी तु हीनांगो राज्यापहृतमानसः ।
धूमे द्वितीये सम्प्राप्ते मन्दप्रज्ञो नपुंसकः ।। 2 ।।
मतिमान् शौर्यसम्पन्न इष्टचित्तः प्रियंवदः ।
धूमे सहज भावस्थे धनाढ्यो धनवान् भवेत् ।। 3 ।।
कलत्राङ्गपरित्यक्तो नित्यं मनसि दुःखितः ।
धूमे चतुर्थे सम्प्राप्ते सर्वशास्त्रार्थचिन्तकः ।। 4 ।।

स्वल्पापत्योधनैर्हीनो धूमे पंचमसंस्थिते ।
गुरुता सर्वभक्षं च सुहृन्मन्त्र विवर्जितः ।। 5 ।।
बलवांछत्रुवधको धूमे च रिपुभावगे ।
बहुतेजोयुतः ख्यातः सदा रोगविवर्जितः ।। 6 ।।

(i) लग्न में धूम हो तो मनुष्य शूरवीर, निर्मल आँखों वाला, अड़ियल, निर्दयी, खल, अति क्रोधी होता है ।

(ii) द्वितीयस्थ धूम से रोगी, धनी, हीनांग, राज्यपक्ष की चिन्ता में मग्न रहने वाला, मन्दबुद्धि, नपुंसक होता है ।

(iii) तृतीयस्थ धूम से बुद्धिमान्, शूरवीर, उदारमन, प्रियभाषी, धनी होता है ।

(iv) चतुर्थस्थ धूम से स्त्री शरीर के सुख से रहित, सदैव मन में दुःखी रहने वाला, सब शास्त्रों के अर्थों का विचारक (व्याख्याता या विचारक) होता है ।

(v) पंचमस्थ धूम से कम सन्तान, धनहीन, मोटा या बड़प्पन मानने वाला, सब कुछ खा लेने वाला, मित्र व सलाहकारों से रहित होता है ।

(vi) षष्ठस्थ धूम से शत्रुनाशक, तेजस्वी, प्रसिद्ध व रोगहीन होता है ।

पूर्वोक्त क्रमिक उदाहरण में अप्रकाश ग्रहों (उपग्रहों) का स्पष्टीकरण पहले कर चुके हैं । तदनुसार सुविधार्थ यहाँ कर्क जन्म लग्न में धूमादि ग्रहों की स्थिति प्रदर्शित की जा रही है ।

(उदाहरणम्)

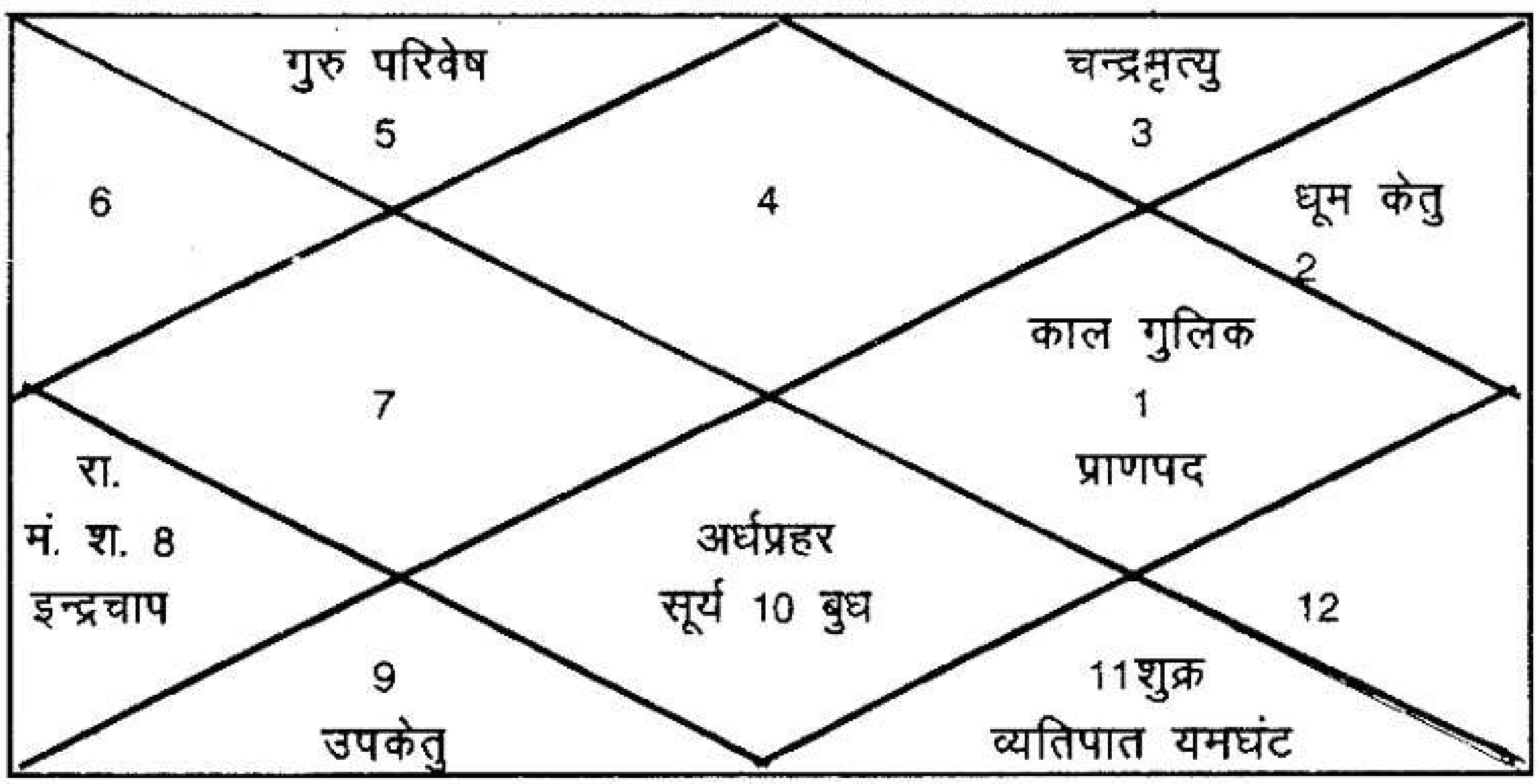

निर्धनः सततं कामी परदारेषु कोविदः ।
धूमे सप्तमगे जातो निस्तेजः सर्वदा भवेत् ।। 7 ।।

विक्रमेण परित्यक्तः सोत्साहो सत्यसंगरः ।

अप्रियो निष्ठुरः स्वार्थी धूमे मृत्युगते सति ।। 8 ।।

सुतसौभाग्य सम्पन्नो धनी मानी दयान्वितः ।

धर्मस्थाने स्थिते धूमे धर्मवान् बन्धुवत्सलः ।। 9 ।।

सुतसौभाग्यसंयुक्तः सन्तोषी मतिमान् सुखी ।

कर्मस्थे मानवो नित्यं धूमे सत्यपदस्थितः ।। 10 ।।

धनधान्य हिरण्याढ्यो रूपवांश्च कलान्वितः ।

धूमे लाभगते चैव विनीतो गीतकोविदः ।। 11 ।।

पतितः पापकर्मा च धूमे द्वादश संगते ।

परदारेषु संसक्तो व्यसनी निर्घृणः शठः ।। 12 ।।

(i) सप्तमस्थ धूम से निर्धन, कामुक, परस्त्रीगमन में कुशल, तेजो हीन होता है ।

(ii) अष्टमस्थ धूम से पराक्रम रहित, उत्साही, सत्य के लिए संघर्ष करने वाला, अप्रिय, कठोर, स्वार्थी होता है ।

(iii) नवमस्थ धूम से सुत व सौभाग्य से युक्त, धनी, सम्मानित, दयालु, धार्मिक व बन्धुप्रेमी होता है ।

(iv) दशमस्थ धूम से पुत्र व सौभाग्य से युक्त, सन्तोषी, बुद्धिमान्, सुखी, सत्यवादी होता है ।

(v) एकादशस्थ धूम से धनी, धन-धान्ययुक्त, सोना आदि रखने वाला, रूपवान्, संगीतज्ञ या काव्यज्ञ, कला से युक्त, विनीत होता है ।

(vi) द्वादशस्थ धूम से नीच, भ्रष्ट, पापी, परस्त्रीगामी, व्यसनी, निर्दय व धूर्त होता है ।

पातभाव फल :–

लग्नगे व्यतिपाते तु जातो दुःखनिपीडितः ।

क्रूरो घातकरो मूर्खो द्वेषी बन्धुजनस्य च ।। 13 ।।

जिह्मोऽतिपित्तवान् भोगी धनस्थे पातसंज्ञके ।

निर्घृणश्चाकृतज्ञश्च दुष्टात्मा पापकृत्तथा ।। 14 ।।

स्थिरप्रज्ञो रणी दाता धनाढ्यो राजवल्लभः ।

सम्प्राप्ते सहजे प्राप्ते सेनाधीशो भवेन्नरः ।। 15 ।।

बन्धव्याधिसमायुक्तः सुतसौभाग्य वर्जितः ।

चतुर्थगो यदा पातस्तदा स्यान्मनुजश्च सः ।। 16 ।।

दरिद्रो रूपसंयुक्तः पाते पंचमगे सति ।
कफपित्तानिलैर्युक्तो निष्ठुरो निरपत्रपः ।। 17 ।।
शत्रुहन्ता सुपुष्टश्च सर्वास्त्राणांच ग्राहकः ।
कलासु निपुणः शान्तः पाते शत्रुगते सति ।। 18 ।।
धनदारसुतैस्त्यक्तः स्त्रीजितो दुःखसंयुतः ।
पाते कलत्रगे कामी निर्लज्जः परसौहृदः ।। 19 ।।

(i) लग्नस्थ व्यतिपात से मनुष्य दुःखी, क्रूर, घातक स्वभाव, मूर्ख, बन्धुद्वेषी होता है ।

(ii) द्वितीयस्थ पात से चालबाज, अधिक पित्त वाला, भोगी, निर्दय, अहसान न मानने वाला, दुष्ट मन वाला, पापकार्य करने वाला होता है ।

(iii) तृतीयस्थ पात से स्थिर बुद्धि, युद्धवीर, दाता, धनी, राजा का प्रिय व सेनापति होता है ।

(iv) चतुर्थस्थ पात से बन्धक व व्याधि से पीड़ित, पुत्र व भाग्य से रहित होता है ।

(v) पंचमस्थ पात से दरिद्र लेकिन सुन्दर, कफ पित्त की अधिकता वाला, कठोर, निर्लज्ज होता है ।

(vi) षष्ठस्थ पात से शत्रुनाशक, बलवान्, सब शस्त्रों में कुशल, कलानिपुण शान्त होता है ।

(vii) सप्तमस्थ पात से धन, पुत्र व स्त्री से रहित, स्त्री से पराजित, दुःखी, कामुक, निर्लज्ज शत्रुओं से मिल जाने वाला अर्थात् गद्दार होता है ।

विकलाक्षो विरूपश्च दुर्भगो द्विजनिन्दकः ।
मृत्युस्थाने स्थिते पाते रक्तपीडापरिप्लुतः ।। 20 ।।
बहुव्यापारको नित्यं बहुमित्रो बहुश्रुतः ।
धर्मभे पातखेटे च स्त्रीप्रियश्च प्रियंवदः ।। 21 ।।
सश्रीको धर्मकृच्छान्तो धर्मकार्येषु कोविदः ।
कर्मस्थे पातसंज्ञे हि महाप्राज्ञो विचक्षणः ।। 22 ।।
प्रभूतधनवान् मानी सत्यवादी दृढव्रतः ।
अश्वाढ्यो गीतसंसक्तः पाते लाभगते सति ।। 23 ।।
कोपी च बहुकर्माढ्यो व्यङ्गोधर्मस्य दूषकः ।
व्ययस्थाने गते पाते विद्वेषी निजबन्धुषु ।। 24 ।।

(i) अष्टमस्थ पात हो तो मनुष्य नेत्र विकार वाला, दिखने में बदसूरत, दुर्भाग्यशाली, ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला, रक्त विकार से पीड़ित होता है।

(ii) नवमस्थ पात से अनेक व्यापार करने वाला, अनेक मित्रों वाला, बहुत अधिक विविध जानकारी रखने वाला, स्त्रियों का प्रिय व प्रियभाषी होता है।

(iii) दशमस्थ पात से श्रीमान्, शोभाशाली, धर्मतत्त्व को जानने वाला, धर्म कार्यों में निपुण, बहुत बुद्धिमान्, विद्वान् व तीव्र बुद्धि होता है।

(iv) एकादशस्थ पात से खूब धनी, स्वाभिमानी, सत्यवादी, पक्के वचन वाला, घोड़े आदि वाहनों से युक्त, गीत-गान आदि में मन लगाने वाला होता है।

(v) द्वादशस्थ पात से क्रोधी, बहुत अधिक कार्य करने वाला, विकलांग, धर्मभ्रष्ट, अपने लोगों से द्वेष रखने वाला होता है।

पूर्वोक्त उदाहरण में पात अष्टमस्थ है, व धूम लाभस्थ है। धूम का फल खूब धनी होना व कार्यकुशल या कलान्वित अर्थात् हुनरमन्द, धनप्रद विद्या से युक्त समझा जाएगा। इसके विपरीत पात का फल नेत्रविकार, द्विजनिन्दा आदि है। इन दोनों फलों में धनी या निर्धन होने की बात उभयत्र नहीं है। अतः इन फलों का नाश न होकर दोनों ही प्रकार के फल यथावसर मिलेंगे। यदि एक जगह धनी व दूसरी जगह निर्धन होना होता तो धन का सम्बन्ध सामान्य होने से **'तुल्य फलयोर्द्वयोर्नाशः विरोधे सति'** जो कहा था तदनुसार धनी या निर्धन कुछ भी नहीं होता। इसी तरह सारे फलों में समन्वय स्थापित करना चाहिए।

परिवेष फलः—

विद्वान् सत्यरतः शान्तो धनवान् पुत्रवान् शुचिः।
परिधौ तनुगे दाता ज़ायते गुरुवत्सलः।। 25।।
ईश्वरो रूपवान् भोगी सुखी धर्मपरायणः।
धनस्थे परिधौ जातः प्रभुर्भवति मानवः।। 26।।
स्त्रीवल्लभः सुरूपांगो देवस्वजनसंगतः।
तृतीये परिधौ भृत्यो गुरुभक्तिसमन्वितः।। 27।।
परिधौ सुखभावस्थे विस्मितं त्वरिमंगलम्।
अक्रूरं त्वथ सम्पूर्ण कुरुते गीतकोविदम्।। 28।।

लक्ष्मीवान् शीलवान् कान्तः प्रियवाक् धर्मवत्सलः ।
पंचमे परिधौ जातः स्त्रीणां भवति वल्लभः ।। 29 ।।
भक्तोऽर्थपुत्रवान् भोगी सर्वसत्वहिते रतः ।
परिधौ रिपुभावस्थे शत्रुहा जायते नरः ।। 30 ।।
स्वल्पापत्यः सुखैर्हीनो मन्दप्रज्ञः सुनिष्ठुरः ।
परिधौ द्यूनभावस्थे स्त्रीणां व्याधिश्च जायते ।। 31 ।।

(i) लग्नस्थ परिवेष (परिधि) हो तो विद्वान् सत्यप्रिय, शान्त, धनी, पुत्रवान्, पवित्र आचरण करने वाला, दानी, गुरु का प्रिय होता है ।

(ii) द्वितीयस्थ परिवेष से राजा या राजतुल्य, रूपवान्, भोगवान्, सुखी, धर्मपरायण, स्वामी अर्थात् अधिकारी या मालिक या समर्थ होता है ।

(iii) तृतीयस्थ परिवेष से स्त्रियों का प्यारा, सुन्दर शरीर वाला, देवताओं का भक्त, नौकरी करने वाला, गुरुभक्तियुक्त होता है ।

(iv) चतुर्थस्थ परिवेष से भ्रमित सा रहने वाला, शत्रुओं का भी उपकारक, क्रूरता रहित, संगीतज्ञ होता है ।

(v) पंचमस्थ परिधि से धनी, चरित्रवान्, प्रियदर्शन, धर्मप्रिय, प्रियभाषी, व स्त्रियों का प्यारा होता है ।

(vi) षष्ठस्थ परिधि से धनी व पुत्रवान्, भोगवान्, सब प्राणियों के हित में रत, शत्रुनाशक होता है ।

(vii) सप्तमस्थ परिधि से कम सन्तान वाला, सुखहीन, मन्द बुद्धि, कठोर हृदय, बीमार स्त्री वाला होता है ।

अध्यात्मचिन्तकः शान्तो दृढकायो दृढव्रतः ।
धर्मवांश्च ससत्त्वश्च परिधौ रन्ध्रसंस्थिते ।। 32 ।।
पुत्रान्वितः सुखी कान्तो धनाढ्यो लौल्यवर्जितः ।
परिधौ दशमे प्राप्ते सर्वशास्त्रार्थपारगः ।। 33 ।।
कलाभिज्ञस्तथा भोगी दृढकायो ह्यमत्सरः ।
परिधौ दशमे प्राप्ते सर्वशास्त्रार्थपारगः ।। 34 ।।
स्त्रीभोगी गुणवांश्चैव मतिमान् सर्वजनप्रियः ।
लाभगे परिधौ जातो मन्दाग्निरुपपद्यते ।। 35 ।।
व्ययस्थे परिधौ जातो व्ययकृत् मानवः सदा ।
दुःखभाग् दुष्टबुद्धिश्च गुरुनिन्दापरायणः ।। 36 ।।

(i) अष्टमस्थ परिवेष से मनुष्य अध्यात्म विषयों का विचारक, शान्त, मजबूत शरीर वाला, पक्के वचन वाला, धार्मिक, सत्त्वगुणी होता है ।

(ii) नवमस्थ परिवेष से पुत्रवान्, सुखी, सुन्दर, थोड़े से ही सन्तुष्ट रहने वाला, धनी, चंचलता से रहित, स्वाभिमानी होता है।

(iii) दशमस्थ परिवेष से कलाकार, भोगवान्, दृढ़ शरीर वाला, ईर्ष्या रहित, सब शास्त्रों के अर्थ को जानने वाला होता है।

(iv) एकादशस्थ परिवेष से स्त्री भोगी, गुणवान्, बुद्धिमान्, सब लोगों का प्रिय, पाचन शक्ति में कमी वाला होता है।

(v) द्वादशस्थ परिवेष से सदैव खर्च करने वाला, दुःखी, दुष्ट बुद्धि, गुरुओं की निन्दा करने वाला होता है।

चापभाव फल :–

धनधान्य हिरण्याढ्यः कृतज्ञः सम्मतः सताम्।
सर्वदोषपरित्यक्तश्चापे तनुगते नरः ।। 37 ।।
प्रियंवदः प्रगल्भाढ्यौ विनीतो विद्ययान्वितः।
धनस्थे चापखेटे च रूपवान् धर्मतत्परः ।। 38 ।।
कृपणोऽति कलाभिज्ञश्चौर्यकर्मरतः सदा।
सहजे धनुषि प्राप्ते हीनांगो गतसौहृदः ।। 39 ।।
सुखी गोधनधान्याढ्यै राजसम्मानपूजितः।
कार्मुके सुखसंस्थे तु नीरोगो ननु जायते ।। 40 ।।
रुचिमान् दीर्घदर्शी च देवभक्तः प्रियंवदः।
चापे पंचमगे जातो विवृद्धः सर्वकर्मसु ।। 41 ।।
शत्रुहन्ताऽतिधूर्तश्च सुखी प्रीतिरुचिः शुचिः।
षष्ठस्थानगते चापे सर्वकर्मसमृद्धिभाक् ।। 42 ।।

(i) लग्नस्थ, इन्द्रधनु से मनुष्य धनधान्य व सुवर्ण से युक्त, कृतज्ञ, सज्जनों द्वारा समर्थित, सब दोषों से रहित होता है।

(ii) द्वितीयस्थ इन्द्रचाप से प्रियभाषी, प्रगल्भ, धनी, विनीत, विद्यावान्, रूपवान् व धर्मपालन में तत्पर रहता है।

(iii) तृतीयस्थ इन्द्रधनु से कंजूस, अत्यधिक कलाओं का ज्ञाता, चोरी से प्रेम करने वाला, हीनांग व मित्रों से रहित होता है।

(iv) चतुर्थस्थ इन्द्रधनु से सुख, चतुष्पद धन से युक्त, धनधान्य वाला, राजा द्वारा सम्मानित, नीरोग होता है।

(v) पंचमस्थ चाप से तेजस्वी, दूर की बात सोचने वाला, देवभक्त, प्रियभाषी, सर्वत्र बढ़ोत्तरी पाने वाला होता है।

(vi) षष्ठस्थ चाप से शत्रुहन्ता, अत्यधिक धोखेबाज, सुखी, प्रेमी स्वभाव, पवित्र, सर्वत्र सफलता पाने वाला होता है।

ईश्वरो गुणसम्पूर्णः शास्त्रविद् धार्मिकः प्रियः।
चापे सप्तमभावस्थे भवतीति न संशयः ।। 43 ।।
परकर्मरतः क्रूरः परदारपरायणः।
अष्टमस्थानगे चापे जायते विकलांगकः ।। 44 ।।
तपस्वी व्रतचर्यासु निरतो विद्ययाऽधिकः।
धर्मस्थे जायते चापे मानवो लोकविश्रुतः ।। 45 ।।
बहुपुत्र धनैश्वर्यो गोमहिष्यादिमान् भवेत्।
कर्मभे चापसंयुक्ते जायते लोकविश्रुतः ।। 46 ।।
लाभगे चापखेटे च लाभयुक्तो भवेन्नरः।
नीरोगो दृढकोपाग्निर्मन्त्रस्त्री परमास्त्रवित् ।। 47 ।।
खलोऽतिमानी दुर्बुद्धिर्निर्लज्जो व्ययसंस्थिते।
चापे परस्त्रीसंयुक्तो जायते निर्धनः सदा ।। 48 ।।

(i) सप्तमस्थ चाप से स्वामी या राजा, गुणवान्, शस्त्रवेत्ता, धार्मिक, प्रिय होता है।

(ii) अष्टमस्थ चाप से दूसरों की नौकरी करने वाला, परस्त्री से प्रेम करने वाला, विकलांग होता है।

(iii) नवमस्थ चाप से तपस्वी, व्रती, विद्यावान्, लोकप्रसिद्ध होता है।

(iv) दशमस्थ चाप से मनुष्य अनेक पुत्रोंवाला, धनी, ऐश्वर्यशाली, चतुष्पद धन से युक्त, प्रसिद्ध होता है।

(v) एकादशस्थ इन्द्रचाप से सदैव लाभ पाने वाला, नीरोग, अधिक क्रोधी, अच्छा सलाहकार, स्त्री के गूढ़ स्वभाव को जानने वाला, शस्त्रविद्या में निष्णात होता है।

(vi) द्वादशस्थ चाप से दुष्ट, घमंडी, दुर्बुद्धि, निर्लज्ज, परस्त्री प्रेमी, निर्धन होता है।

उपकेतुभावफल :–

कुशलः सर्वविद्यासु सुखी वाङ्निपुणः प्रियः।
तनौ शिखिनिसंजातः सर्वकामान्वितो भवेत् ।। 49 ।।
वक्ता प्रियंवदः कान्तो धनस्थानगते ध्वजे।
काव्यकृत् पण्डितो मानी विनीतो वाहनान्वितः ।। 50 ।।

कदर्यः क्रूरकर्ता च कृशांगो धनवर्जितः ।

सहजस्थे तु शिखिनि तीव्ररोगी प्रजायते ।। 51 ।।

रूपवान् गुणसम्पन्नः सात्त्विकोऽपि श्रुतिप्रियः ।

सुखसंस्थे तु शिखिनि सदा भवति सौख्यभाक् ।। 52 ।।

सुखीभोगी कलाविच्च पंचमस्थानगे ध्वजे ।

युक्तिजो मतिमान् वाग्मी गुरुभक्तिसमन्वितः ।। 53 ।।

मातृपक्षक्षयकरः शत्रुहा बहुबान्धवः ।

रिपुस्थाने ध्वजे प्राप्ते शूरः कान्तो विचक्षणः ।। 54 ।।

द्यूतक्रीडाप्वभिरतः कामी भोगसमन्वितः ।

ध्वजे तु सप्तमस्थाने वैश्यासु कृतसौह्रदः ।। 55 ।।

नीचकर्मरतः पापो निर्लज्जो निन्दकः सदा ।

मृत्युस्थाने ध्वजे प्राप्ते गतस्त्रीकः परैर्हतः ।। 56 ।।

(i) लग्न में उपकेतु हो तो सब विद्याओं में कुशल, सुखी, वाक्चतुर, प्रिय, सब इच्छाएँ पूर्ण होने का योग पाता है ।

(ii) द्वितीयस्थ उपकेतु से अच्छा वक्ता, प्रियभाषी, सुन्दर, काव्यकर्ता, पण्डित, अभिमानी, विनीत, वाहन सुख से युक्त होता है ।

(iii) तृतीयस्थ उपकेतु से बहुत छोटे हृदय वाला अर्थात् स्वार्थी व कंजूस, क्रूरतापूर्ण व्यवहार करने वाला, पतले शरीर वाला, धनरहित, तीव्ररोग से पीड़ित होता है ।

(iv) चतुर्थस्थ उपकेतु हो तो रूपवान्, गुणसम्पन्न, सात्त्विक, वेदों से प्रेम करने वाला, सदा सुखी होता है ।

(v) पंचमस्थ उपकेतु से सुखी, भोगवान्, कलाविद्, युक्तिपूर्वक कार्यसाधन करने वाला, बुद्धिमान्, वाक्चतुर, गुरुभक्ति से युक्त होता है ।

(vi) षष्ठस्थ उपकेतु से मामा के पक्ष को हानि पहुचाँने वाला, शत्रु नाशक, अनेक बान्धवों वाला, शूरवीर, सुन्दर व तीव्रबुद्धि होता है ।

(vii) सप्तमस्थ उपकेतु से जूआप्रेमी, कामुक, भोगवान्, वेश्याओं से मन लगाने वाला होता है ।

(viii) अष्टमस्थ उपकेतु से नीच कार्य करने वाला, पापी, निर्लज्ज, निन्दा करने वाला, स्त्री सुख से रहित, शत्रुपीड़ित होता है ।

लिङ्गधारी प्रसन्नात्मा, सर्वभूतहितेरतः ।

धर्मभे शिखिनि प्राप्ते धर्मकार्येषु कोविदः ।। 57 ।।

सुखसौभाग्यसम्पन्नः कामिनीनां च वल्लभः ।
दाता द्विजैः समायुक्तः कर्मस्थे शिखिनि नरः ।। 58 ।।
नित्यलाभः सुधर्मी च लाभे शिखिनि पूजितः ।
धनाढ्यः सुभगः शूरः सुयज्ञश्चातिकोविदः ।। 59 ।।
पापकर्मरतः शूरः श्रद्धाहीनोऽघृणो नरः ।
परदाररतो रौद्रः शिखिनि व्ययगे सति ।। 60 ।।

(i) नवमस्थ उपकेतु हो तो किसी धार्मिक सम्प्रदाय के चिन्ह को धारण करने वाला, (जैसे वैष्णव रहने पर तुलसी की माला या पीला तिलक, इत्यादि) प्रसन्न मन वाला, सब प्राणियों का भला चाहने वाला, धर्म कार्यों में कुशल होता है ।

(ii) दशमस्थ उपकेतु से सुख–सौभाग्य से युक्त, स्त्रियों का प्रिय, दान देने वाला, द्विजों से घिरा रहने वाला होता है ।

(iii) एकादशस्थ उपकेतु से सदैव लाभ कमाने वाला, सद्धर्म का पालन करने वाला, पूजित, धनी, भाग्यशाली, शूरवीर, यज्ञ करने वाला, विद्वान् होता है ।

(iv) द्वादशस्थ उपकेतु से पापकार्य करने वाला, श्रद्धाहीन, निर्दय, परस्त्री में लगा हुआ होता है ।

गुलिक भाव फलः–

रोगार्तः सततं कामी पापात्माधिगतः शठः ।
तनुस्थे गुलिके जातः खलभावोऽतिदुःखितः ।। 61 ।।
विकृतो दुःखितः क्षुद्रो व्यसनी च गतत्रपः ।
धनस्थे गुलिके जातो निःस्वो भवति मानवः ।। 62 ।।
चार्वङ्गो ग्रामपः पुण्यसंयुक्तः सज्जनप्रियः ।
सहजे गुलिके जातो मानवो राजपूजितः ।। 63 ।।

(i) लग्नस्थ गुलिक से रोगपीड़ित, कामुक स्वभाव, पापी मन वाला, शठ, खलस्वभाव, अति दुःखी होता है ।

(ii) द्वितीयस्थ गुलिक से विकारयुक्त, दुःखी, नीच, व्यसनों से पीड़ित, निर्लज्ज, दीनहीन होता है ।

(iii) तृतीयस्थ गुलिक से सुन्दर शरीर वाला, पुण्य कार्य करने वाला, सज्जनों का प्रेमी, राजपूज्य होता है ।

रोगी सुखपरित्यक्तः सदा भवति पापकृत् ।
गुलिके सुखभावस्थे वातपित्ताधिको भवेत् ।। 64 ।।

विस्तुतिर्विधनोऽल्पायुर्द्वेषी क्षुद्रो नपुंसकः ।
गुलिके सुतभावस्थे स्त्रीजितो नास्तिको भवेत् ।। 65 ।।
वीतशत्रुः सुपुष्टांगो रिपुस्थाने यमात्मजे ।
सुदीप्तः सम्मतः स्त्रीणां सोत्साहः सुदृढो हितः ।। 66 ।।
स्त्रीजितः पापकृज्जारः कृशांगो गतसौहृदः ।
जीवितः स्त्रीधनेनैव गुलिके सप्तमस्थिते ।। 67 ।।

(i) चतुर्थस्थ गुलिक हो तो रोगी, सुखहीन, पापकारी, वात व पित्त विकार से युक्त होता है ।

(ii) पंचमस्थ गुलिक हो तो कहीं भी प्रशंसा न पाने वाला, धनहीन, अल्पायु, द्वेषपूर्ण स्वभाव वाला, नीच, नपुसंक, स्त्री से पराजित, नास्तिक होता है ।

(iii) षष्ठस्थ गुलिक से शत्रुओं से रहित, पुष्ट शरीर वाला, तेजस्वी, स्त्रियों द्वारा मान्य, उत्साही, दृढ़ विचार वाला व हितकारी होता है ।

(iv) सप्तमस्थ गुलिक से स्त्री से पराजित, पापकार्य करने वाला, स्त्रीगामी, पतला, मित्रता रहित, स्त्री के धन से ही मौज करने वाला होता है ।

क्षुधालुर्दुःखितः क्रूरस्तीक्ष्णरोषोऽतिनिर्घृणः ।
रन्ध्रगे गुलिके निःस्वो जायते गुणवर्जितः ।। 68 ।।
बहुक्लेशः कृशतनुर्दुष्टकर्मातिनिर्घृणः ।
गुलिके धर्मगे मन्दः पिशुनो बहिराकृतिः ।। 69 ।।

(v) अष्टमस्थ गुलिक हो तो भूख से पीड़ित, क्रूर स्वभाव वाला, तीव्र क्रोधी, अत्यधिक निर्दय, दीनहीन व गुणरहित होता है ।

(vi) नवमस्थ, गुलिक से बहुत क्लेश पाने वाला, पतले शरीर वाला, दुष्टतापूर्ण कार्य करने वाला, निर्दय, मन्दबुद्धि या आलसी, चुगलखोर, बाहर से अच्छा दिखने वाला होता है ।

पुत्रान्वितः सुखी भोक्ता देवाग्न्यर्चनवत्सलः ।
दशमे गुलिको जातो योगधर्माश्रितः सुखी ।। 70 ।।
सुस्त्रीभोगी प्रजाध्यक्षो बन्धूनां च हिते रतः ।
लाभस्थे गुलिके जातो नीचांगः सार्वभौमिकः ।। 71 ।।
नीचकर्माश्रितः पापो हीनांगो दुर्भगोऽलसः ।
व्ययगे गुलिके जातो नीचेषु कुरुते रतिम् ।। 72 ।।

(i) दशमस्थ गुलिक से सुखी, भोग भोगने वाला, देवता, अग्नि आदि की पूजा करने में रुचि रखने वाला, योगधर्म यम–नियमादि द्वारा मन व इन्द्रियों को प्रायः नियन्त्रित करने वाला होता है ।

(ii) एकादशस्थ गुलिक से अच्छी स्त्री पाने वाला, प्रजा का अध्यक्ष अर्थात् मुखिया, अपने बन्धुओं (बिरादरी) का भला करने वाला, नीचा कद, सब तरह से अधिकार–सम्पन्न होता है ।

(iii) व्ययस्थ गुलिक से नीच कार्य करने वाला, अंगहीन, दुर्भाग्यशाली, आलसी, नीच लोगों से प्रेम करने वाला होता है ।

प्राणपद भाव फलः–

लग्ने प्राणपदे क्षीणो रोगी भवति मानवः ।
मूकोन्मत्तो जडाङ्गस्तु हीनांगो दुःखितः कृशः ।। 73 ।।
बहुधान्यो बहुधनो बहुभृत्यो बहुप्रजः ।
धनस्थानस्थिते प्राणे सुभगो जायते नरः ।। 74 ।।
हिंस्रो गर्वसमायुक्तो निष्ठुरोऽतिमलिम्लुचः ।
तृतीयगे प्राणपदे गुरुभक्तिविवर्जितः ।। 75 ।।
सुखस्थे तु सुखी कान्तः सुहृद्रामासु वल्लभः ।
गुरौ परायणः शीतः प्राणे वै सत्यतत्परः ।। 76 ।।

(i) लग्न में प्राणपद हो तो मनुष्य कमजोर, रोगी, गूँगा, उन्मत्त, आलसी शरीर वाला, हीनांग, दुःखी व पतला होता है ।

(ii) द्वितीयस्थ प्राणपद हो तो मनुष्य बहुत धान्य वाला, बहुत धन वाला, अनेक नौकरों वाला, अनेक सन्तान वाला, सौभाग्यशाली होता है ।

(iii) तृतीयस्थ प्राणपद से हिंसक, घमंडी, कठोर, अति मलिन, गुरुभक्ति से रहित होता है ।

(iv) चतुर्थस्थ प्राणपद से सुन्दर, मित्रों व स्त्रियों का प्यारा, गुरुभक्त, शीतल स्वभाव व सत्यवादी होता है ।

सुखभाग् सुक्रियोपेतस्त्वपचार दयान्वितः ।
पंचमस्थे प्राणपदे सर्वकामसमन्वितः ।। 77 ।।
बन्धुशत्रुवशस्तीक्ष्णो मन्दाग्निर्निर्दयः खलः ।
षष्ठे प्राणपदे रोगी वित्तपोऽल्पायुरेव च ।। 78 ।।
ईर्ष्यालुः सततं कामी तीव्र रौद्रवपुर्नरः ।
सप्तमस्थे प्राणपदे दुराराध्यः कुबुद्धिमान् ।। 79 ।।

रोगसन्तापितांगश्च प्राणपादेऽष्टमे सति ।

पीडितः पार्थिवैर्दुखैर्भृत्यबन्धुसमुद्भवैः ।। 80 ।।

(i) पंचमस्थ प्राणपद से मनुष्य सुन्दर कर्म करने वाला, सुखी, स्वाभाविक दयालु, सब मनोरथों को पाने वाला होता है ।

(ii) षष्ठस्थ प्राणपद से बन्धुओं व शत्रुओं के वश में रहने वाला, मन्दाग्नि, निर्दय, खलबुद्धि, रोगी, धनी लेकिन अल्पायु होता है ।

(iii) सप्तमस्थ प्राणपद से ईर्ष्यालु, कामुक, तीव्र क्रोधी, गुस्सैल दिखने वाला, सरलता से प्रसन्न न होने वाला, कुबुद्धियुक्त होता है ।

(iv) अष्टमस्थ प्राणपद से रोगी, राजा से पीड़ित, बन्धुकृत व सेवककृत दुःखों से पीड़ित होता है ।

पुत्रवान् धनसम्पन्नः सुभगः प्रियदर्शनः ।

प्राणे धर्मस्थिते भृत्यः सदाऽदुष्टो विचक्षणः ।। 81 ।।

वीर्यवान् मतिमान् दक्षो नृपकार्येषु कोविदः ।

दशमे वै प्राणपदे देवार्चनपरायणः ।। 82 ।।

(i) नवमस्थ प्राणपद से धनी, पुत्रवान्, सुन्दर, आकर्षक, नौकरी करने वाला, सज्जन व चतुर होता है ।

(ii) दशमस्थ प्राणपद से वीर्यशाली, बुद्धिमान्, चतुर, राजकाज में निपुण, देवताओं का भक्त होता है ।

विख्यातो गुणवान् प्राज्ञो भोगी धनसमन्वितः ।

लाभस्थाने स्थिते प्राणे गौरांगो मातृवत्सलः ।। 83 ।।

क्षुद्रो दुष्टस्तु हीनांगो विद्वेषी द्विजबन्धुषु ।

व्यये प्राणे नेत्ररोगी काणो वा जायते नरः ।। 84 ।।

(i) एकादशस्थ प्राणपद से प्रसिद्ध, गुणी, विद्वान्, भोगी, धनी, गौर वर्ण व माता का प्रिय होता है ।

(ii) द्वादशस्थ प्राणपद से नीच, दुष्ट, हीनांग, ब्राह्मणों व बन्धुओं से द्वेष रखने वाला, नेत्र रोगी या काणा होता है ।

अप्रकाश ग्रहफल की अनिवार्यता :–

इत्यप्रकाशखेटानां फलान्युक्तानि भूसुर ! ।

तथा यानि प्रकाशानां सूर्यादीनां खचारिणाम् ।। 85 ।।

तानि स्थितिवशात्तेषां स्फुटदृष्टिवशान्तथा ।

बलाबल विवेकेन वक्तव्यानि शरीरिणाम् ।। 86 ।।

इस प्रकार मैंने धूमादि पाँचों अप्रकाश ग्रहों व गुलिक प्राणपद का भावगत फल कहा है। पहले अप्रकाश ग्रहों का फल विचार करके बाद में सूर्यादि प्रकाश ग्रहों के फल का समन्वय करना चाहिए। ग्रहों पर दृष्टिवशात् तथा बलाबल विवेक से शुभाशुभ फल का निर्णय करना चाहिए। अर्थात् जिस भाव का फल अप्रकाश ग्रहों से अशुभ हो और प्रकाश ग्रहों से शुभ आए तो मध्यम फल समझें। दोनों से शुभ आने पर अत्यन्त शुभ मानना चाहिए।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
प्रकाशग्रहफलाध्यायः षड्विंशः ।। **26** ।।

27

।। अथ पदाध्यायः ।।

पद (आरूढ़) का ज्ञान :–

कथयाम्यथभावानां खेटानां च पदं द्विज ! ।
तद्विशेषफलं ज्ञातुं यथोक्तं प्राङ्महर्षिभिः ।। 1 ।।
लग्नाद्यावतिथे राशौ तिष्ठेल्लग्नेश्वरः क्रमात् ।
ततस्तावतिथे राशौ लग्नस्य पदमुच्यते ।। 2 ।।
सर्वेषामपि भावानां ज्ञेयमेवं पदं द्विज ! ।
तनुभावपदं तत्र बुधा मुख्यपदं विदुः ।। 3 ।।

हे मैत्रेय ! अब मैं आरूढ़ या पद का ज्ञान करने का उपाय बताता हूँ। पद या आरूढ़ से विशेष फल का विचार पुरातन महर्षियों ने कहा है।

लग्न से लग्नेश जितनी राशि आगे हो, लग्नेश से उतनी ही राशि आगे लग्न का पद होता है।

इसी विधि से सब भावों का पद जाना जा सकता है। पुनश्च लग्न के पद अर्थात् लग्नारूढ़ को ही मुख्यपद या पद कहते हैं। अर्थात् अन्य भावों के पदों को धन पद, सहज पद, पुत्र पद आदि नामों से कहा जाएगा, लेकिन लग्न के पद को केवल पद शब्द से अभिहित किया जाता है।

उदाहरणार्थ हमारे क्रमिक उदाहरण में लग्नेश चन्द्रमा द्वादश में है। अतः लग्नेश से द्वादशभाव में (लग्न से एकादश) 'लग्नारूढ़ लग्नपद या मुख्यपद या पद हुआ। धनेश सूर्य, धन भाव से षष्ठ में है। अतः सूर्य से

षष्ठ (लग्नात् द्वादश) में धन पद हुआ। दशमेश मंगल दशम भाव से अष्टम में है, अतः मंगल से अष्टम (लग्नात् द्वादश) में दशम पद हुआ। इसी तरह सब भावों के पद जानकर आगे कुण्डली दिखाई जा रही है।

उक्त नियम का अपवाद :-

स्वस्थानं सप्तमं नैव पदं भवितुमर्हति।

तस्मिन् पदत्वे सम्प्राप्ते मध्यंतुर्यं क्रमात् पदम्॥4॥

यदि किसी भाव का स्वामी उसी भाव में हो तो उक्त नियमानुसार स्वभाव अर्थात् वही भाव पद होगा। लेकिन इसके स्थान पर उक्त स्थिति में दशम को पद समझें।

यदि भाव से सप्तम में ग्रह हो तो भावेश से सप्तम रहने से वह भाव ही स्वयं पद भी होना चाहिए, लेकिन इसके अपवादस्वरूप उससे चतुर्थ भाव को पद समझें। निष्कर्षतः स्वस्थान व सप्तम स्थान पद नहीं होते, इनके स्थान पर क्रमशः दशम व चतुर्थ को पद माना जाता है। यह भावारूढ़ का विचार बताया गया है।

पद कुण्डली (उदाहरण)

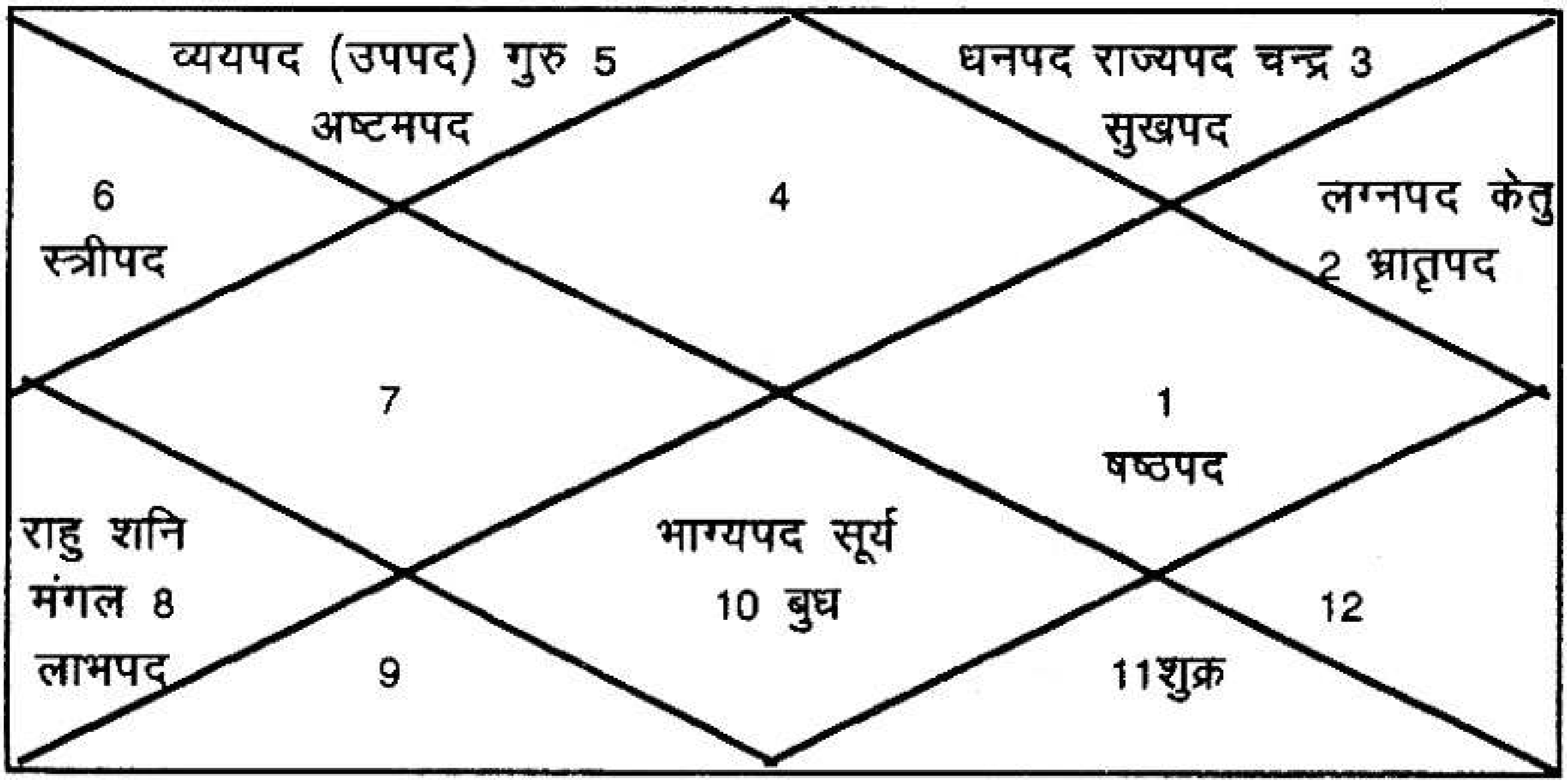

यह विषय जैमिनि सूत्र (सम्पूर्ण) शान्तिप्रिय भाष्य में हम विस्तार से स्पष्ट कर चुके हैं। पद, कारकांश वर्णद उपपद, अर्गलादि बहुत से विषय जैमिनि व पराशर दोनों महर्षियों के ग्रन्थों में यथावत् मिलते हैं। अतः इनकी प्रामाणिकता में कोई सन्देह नहीं तथा इनका फल भी चमत्कारक है। यहीं पर एक बात हम और स्पष्ट कर दें कि जैमिनीय सूत्रों के रहस्य से अनभिज्ञ होने के कारण बहुत से पाराशर टीकाकारों ने सम्बद्ध विषयों का आधा तीतर आधा बटेर कर दिया है अथवा सन्देह के स्थलों पर उन्हें मौन रहना ही उचित लगा। पद विचार में जैमिनीय मत का सामान्य नियम

कि समराशि में विपरीत क्रम से तथा विषम राशि में सीधे क्रम से गणना करनी चाहिए विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है।

वृद्धकारिका उद्धृत है, इसमें 'क्रमात्' कहकर क्रमगणना अर्थात् सीधी गणना को ही रेखांकित किया गया है।

लग्नाद्यावतिथे राशौ तिष्ठेल्लग्नेश्वरः क्रमात्।
ततस्तावतिथं राशिं लग्नारूढं प्रचक्षते।। (वृद्धकारिका)

कह चुके हैं कि सभी पदों में लग्नराशि का पद सर्वमुख्य होता है। जिस प्रकार राशियों के पद होते हैं, उसी तरह ग्रहों के पद भी होते हैं। यह अगले श्लोकों में बताया जा रहा है।

ग्रहों का पदः—

यस्माद्यावतिथे राशौ खेटात् तद्भवनं द्विज!।
ततस्तावतिथं राशिं खेटारूढं प्रचक्षते।।5।।
द्विनाथद्विभयोरेवं व्यवस्था सबलावधि।
विगणय्य पदं विप्र! ततस्तस्य फलं वदेत्।।6।।

ग्रह से उसकी राशि जितना आगे हो, उससे उतना ही आगे ग्रह का आरूढ़ होता है। दो राशियों के स्वामियों के विषय में बलवान् राशि तक गणना करके पद का निर्णय करें।

यहाँ हमारा विचार है कि दो राशियों के स्वामी ग्रहों के दो ही पद होंगे–– एक बलवान् व एक निर्बल। बलवान् से फल निर्णय होगा। बलवान् राशि का निर्णय करते समय ध्यान रखें कि इस सन्दर्भ में ग्रह रहित राशि से ग्रहयुक्त राशि बली है। कम ग्रह वाली राशि से अधिक ग्रह युक्त बली है। समान ग्रह रहने पर जिसमें स्वोच्चादिगत ग्रह हों वह बली है।

'भौमादीनां राशिद्वयं मेषवृश्चिकात्मकमिति पदद्वयं वेदितव्यम्।

(दुर्गा प्रसादः)

हमारे उदाहरण में सूर्य की राशि सिंह, सूर्य से अष्टम में है, अतः सिंह से अष्टम मीन में सूर्य का पद है। मंगल का बलवान् वृश्चिक पद द्वितीय में होगा।

पद कुण्डली से फलादेश :–

पदादेकादशस्थाने ग्रहयुक्तेऽथवेक्षिते।
धनवान् जायते बालस्तथा सुखसमन्वितः।।7।।
शुभयोगात् सुमार्गेण धनाप्तिः पापतोऽन्यथा।
मिश्रैर्मिश्रफलं ज्ञेयं स्वोच्चमित्रादि गेहगैः।।
बहुधा जायते लाभो बहुधा च सुखागमः।।8।।

पद अर्थात् लग्न पद से ग्यारहवें भाव में कोई भी ग्रह हो या उसे कोई भी ग्रह देखे तो मनुष्य धनवान् व सुखी होता है।

यदि वहाँ शुभ ग्रह हों तो न्यायमार्ग, सन्मार्ग से धनागम होता है, तथा पाप ग्रह रहने से अन्याय, बेईमानी या कठोरतापूर्वक धनागम होता है।

मिश्रित ग्रह रहने पर मिलाजुला फल समझना चाहिए। यदि एकादश में स्थित ग्रह शुभ हो या पाप लेकिन स्वोच्च या स्वक्षेत्र में हो तो अनेक प्रकार से अनेक तरह का धन व सुख मिलता है।

पद से राजयोगः–

पदाल्लाभगृहं यस्य पश्यन्ति सकला ग्रहाः।
राजा वा राजतुल्यो वा स जातो नात्र संशयः ।।9।।

पद से एकादश स्थान को सब ग्रह देखते हों तो मनुष्य राजा या राजा तुल्य होता है, इसमें संशय नहीं है।

अति लाभ योग :–

पदाल्लाभगृहं पश्येद् व्ययं कश्चिन्न पश्यति।
अविघ्नेन तदा लाभो जायते द्विजसत्तम ।। 10 ।।
ग्रहदृग्योग बाहुल्ये पदादेकादशे द्विज ।।
सार्गले चापि तत्रापि बह्वर्गलसमागमे ।। 11 ।।
शुभग्रहार्गले विप्र ! तत्राप्युच्चग्रहार्गले।
शुभेन स्वामिना दृष्टे लग्नभाग्याधिपेन वा ।। 12 ।।
जातस्य भाग्यप्राबल्यं निर्दिशेदुत्तरोत्तरम् ।। 13 ।।

(i) पद से ग्यारहवें भाव को ग्रह देखे एवं द्वादश भाव को न देखे तो सरलता से लाभ होता रहता है।

(ii) पद से एकादश में बहुत से ग्रहों का योग या दृष्टि हो तो बहुत लाभ, अर्थात् अधिक ग्रहों के दृग्योग से अधिकाधिक लाभ योग है।

इसकी अपेक्षा यदि ग्यारहवाँ भाव अर्गला युक्त भी हो तो और अधिक लाभ होगा। अधिक ग्रहों की अर्गला से और अधिक लाभ योग होगा।

(iii) शुभ ग्रह की अर्गला से और अधिक, उच्चग्रह की अर्गला से उससे भी अधिक, एकादशेश शुभ ग्रह हो तथा एकादस्थ को देखे या भोग करे तो और अधिक लाभ होगा।

(iv) यदि पद से एकादश को लग्नेश व भाग्येश देखें तो और अधिक अर्थात् उक्त क्रम में उत्तरोत्तर अधिक प्रबल लाभ योग होता है।

इस अध्याय के विषय में हमारे 'जैमिनिसूत्र शान्ति प्रियभाष्य' पृ. 58-71 देखें। अर्गला का विचार प्रस्तुत ग्रन्थ के अर्गलाध्याय में किया

जाएगा। संक्षेप में विचारणीय भाव से 2.4.5.11 भावों में ग्रह होने पर भाव अर्गला युक्त होता है। एवं 3.10.9.12 में भी ग्रह रहने पर अर्गला बाधित हो जाती है।

विचारणीय पद लग्न से एकादश में मीन राशि है। मीन से 4 में चन्द्र,11 में सूर्य बुध हैं। तीन ग्रह से अर्गला बनती है। 4 का प्रति बन्धक दशम भाव ग्रह रहित है तथा 11 का विरोधी भाव तृतीय ग्रह रहित है अतः निर्बाध अर्गला है। शुभ ग्रहों की रहने से शुभार्गला है। अतः लाभ योग बनते हैं।

पद से द्वादश भाव विचार :–

पदस्थानाद्व्यये भावे शुभपापयुतेक्षिते।
व्ययबाहुल्यमित्येवं विशेषोपार्जनात् सदा।। 14।।
लाभअन्याय्यमार्गेण कुमार्गेण शुभाशुभैः।
मिश्रैर्मिश्रफलं वाच्यं विशेषः प्रोच्यतेऽधुना।। 15।।

यदि पद से द्वादश स्थान पर किसी भी ग्रह की दृष्टि या योग हो तो व्यय अधिक होता है। व्यय की अपेक्षा लाभ पर अधिक ग्रहों का योग या दृष्टि हो तो कम व्यय व अधिक रहने पर अधिक व्यय होता है।

जिस प्रकार लाभ भाव का विचार किया था, उसी तरह व्यय पर शुभ ग्रहों का दृष्टियोग रहने से न्यायोचित कार्यों पर एवं अशुभग्रह दृग्योग होने पर अन्याय कार्यों में धन व्यय होता है। मिश्रित ग्रह रहने पर मिश्रित फल होता है। अब आगे पद से द्वादश भाव का विशेष फल कहते हैं।

व्यय का कारण :–

पदारूढाद्व्ययेशुक्रभानुस्वर्भानुभिर्युते।
राजमूलाद् व्ययो वाच्यश्चन्द्रदृष्ट्या विशेषतः।। 16।।
यदारूढाद् व्यये सौम्ये ज्ञातिभ्यो कलहाद् व्ययः।
देवेज्ये करमूलाद् वै व्ययो वाच्यो गुरुर्बुधैः।। 17।।
तथैव सूर्यपुत्रेवै धरापुत्रेण संयुते।
भ्रातृवर्गाद्भवेन्नूनं धनानां निर्गमो मुने।। 18।।
पदाद् व्यये व्ययप्रदा ये योगाः परिकीर्तिताः।
ते एवैकादशे स्थाने लाभयोगकराः मताः।। 19।।

पद से व्यय स्थान में शुक्र, सूर्य व राहु एकत्र हों या इनमें से 1.2.3 ग्रह हों तो राजा या सरकार के कारण धन का व्यय होता है। यदि उक्त ग्रहों को चन्द्र देखे तो विशेषतया धन का व्यय होता है।

पद से व्यय में बुध हो तो जाति बिरादरी के कारण या कलह, वाद-विवाद, मुकदमे आदि में धन खर्च हो जाता है।

गुरु द्वादशस्थ हो तो कर देने (Taxation) में ही धन खर्च हो जाता है ।

शनि मंगल होने से भाइयों के कारण धन का व्यय होता है । इस प्रकार लाभ भाव में ये ही योग लाभप्रद हो जाते हैं । अर्थात् पद से ग्यारहवें भाव में यदि शुक्र, सूर्य, राहु हों तो राजा से, बुध हो तो जाति से या मुकदमे आदि से लाभ होता है ।

उक्त सब योगों में दृष्टि रहने पर कुछ कम व्यय तथा शुभ दृष्ट रहने पर कम कुप्रभाव तथा पाप दृग्योग होने पर विशेष उत्कट कुप्रभाव कहना चाहिए ।

पद से सप्तम भाव विचार :–

आरूढ़ात् सप्तमे राहुरथवा संस्थितः शिखी ।
कुक्षिव्यथायुतो बालः शिखिना पीडितोऽथवा ।।20 ।।
आरूढात् सप्तमे केतुः पापखेटयुतेक्षितः ।
साहसी श्वेतकेशी च वृद्धलिंगी भवेन्नरः ।। 21 ।।

पद लग्न से सप्तम या द्वितीय में राहु या केतु हो तो जातक को पेट की बीमारी होती है अथवा वह कीट संक्रमण से पीड़ित होता है ।

आरूढ़ से 2.7 में केतु पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो जातक के शरीर पर बुढ़ापे के चिन्ह जल्दी दिखते हैं । उसके बाल सफेद होते हैं तथा वह साहसी होता है ।

पदात्तु सप्तमे स्थाने गुरुशुक्रनिशाकराः ।
त्रयो द्वयमथैकोऽपि लक्ष्मीवांजायते नरः ।। 22 ।।
स्वतुंगे सप्तमे खेटः शुभो वाप्यशुभः पदात् ।
श्रीमान् सोऽपि भवेन्नूनं सत्कीर्तिसहितो द्विज ! ।। 23 ।।
ये योगाः सप्तमे स्थाने पदाच्च कथिता मया ।
चिन्त्यास्तथैव ते योगा द्वितीयेऽपि सदा द्विज ! ।। 24 ।।

पद से 2.7 में गुरु, या शुक्र या चन्द्र हो या इनमें से 2.3 ग्रह हों तो मनुष्य धनवान् होता है ।

यदि 2.7 में उच्चगत कोई भी ग्रह हो तो भी मनुष्य विख्यात तथा धनी होता है ।

जो योग मैंने पद से सप्तम स्थान में कहे हैं उनका विचार यथावत् पद से द्वितीय स्थान में भी करना चाहिए ।

यह समस्त विषय यथावत् इसी क्रम से जैमिनि सूत्रों में भी कहा गया है । अतः पाठकों को विशेष व्युत्पत्ति के लिए हमारा जैमिनि सूत्र शान्तिप्रिय भाष्य अवश्य पढ़ना चाहिए ।

विचारणीय उदाहरण में पद से सप्तम में राहु है। अतः पेट में कृमि संक्रमण के योग हैं तथा यही वास्तविकता भी है। पद से द्वितीय में पक्ष बली चन्द्रमा तथा सप्तम में स्वक्षेत्री मंगल मध्यम धनयोग बनाता है।

द्वितीयगत योग :–

उच्चस्थो रौहिणेयो वा जीवो वा शुक्र एव वा।
एको बली धनगतः श्रियं दिशति देहिनाम्।। 25।।
ये योगाश्च पदे लग्ने यथावद् गदिता मया।
ते योगाः कारकांशेऽपि विज्ञेया बाधवर्जिताः।। 26।।

पद लग्न से द्वितीय में उच्चगत चन्द्र, गुरु या शुक्र कोई एक हो तो भी जातक श्रीमान् होता है।

जो योग पद लग्न में कहे हैं, उनका विचार यथावत् कारकांश कुण्डली में भी करना चाहिए।

आरूढात् वित्तभे सौम्ये सर्वदेशाधिपो भवेत्।
सर्वज्ञो यदि वा स स्यात् कविर्वादी च भार्गवे।। 27।।

पद लग्न से द्वितीय में यदि बुध हो तो मनुष्य सार्वभौम राजा, शुक्र हो तो सर्वज्ञ, कवि या वक्ता या वकील होता है।

सप्तम स्थान पद का फल :–

आरुढात् केन्द्रकोणेषु स्थिते दारपदे द्विज !।
लग्न जायापदे वापि सबलग्रहसंयुते।। 28।।
श्रीमांश्च जायते नूनं देशे विख्यातिमान् भवेत्।
षष्ठेऽष्टमे व्ययस्थाने जातोदारपदेऽधनः।। 29।।
पदे तत्सप्तमे वापि केन्द्रे वृद्धौ त्रिकोणके।
सुवीर्यः संस्थितः खेटः भार्याभर्तृ सुखप्रदः।। 30।।

सप्तम भाव का पद यदि पद लग्न से केन्द्र त्रिकोण में पड़े अथवा दोनों पद या कोई एक पद बलवान् ग्रह से युक्त हो तो मनुष्य प्रसिद्ध व श्रीमान् होता है। यदि सप्तम भाव का पद 6.8.12 (पद से) में पड़े तो मनुष्य निर्धन होता है। यदि पद या उससे सप्तम में या पद से केन्द्र कोण में या उपचय में बलवान् ग्रह हो तो स्त्री को पति का व पति को स्त्री का सुख होता है।

विचारणीय कुण्डली में सप्तम स्थान का पद कन्या में है। यह पद लग्न से पंचम में होने से श्रीमान् योग हुआ। पद से केन्द्र में गुरु शुक्र, त्रिकोण में सूर्य बुध, सप्तम में बलवान् मंगल है। अतः स्त्रीसुख योग बनता है।

पद से सप्तम पद का विचार :–

पदाद् दारपदे चैवं केन्द्रे कोणे च संस्थिते ।
द्वयोर्मैत्री भवेन्नूनं त्रिके वैरं न संशयः ।। 31 ।।

पद लग्न से सप्तम भाव का पद यदि केन्द्र त्रिकोण में हो तो पति पत्नी में मित्रता व 6.8.12 में हो तो शत्रुता होती है ।

पद से अन्य सम्बन्धियों का विचार :–

एवं लग्नपदाद् विप्र ! तनयादि पदे स्थिते ।
मित्रामित्रे विजानीयाल्लाभालाभौ विचक्षणः ।। 32 ।।
लग्नदारपदे विप्र ! मिथः केन्द्रगते यदि ।
त्रिलाभयोस्त्रिकोणे वा तदा राजा धराधिपः ।। 33 ।।
एवं लग्नपदादेव धनादि पदतो द्विज !
स्थानद्वयं समालोच्य जातकस्य फलं वदेत् ।। 34 ।।

इसी तरह पद लग्न से जिस पुत्र, मित्रादि के पद केन्द्र या त्रिकोण में हों, उनमें मैत्री, अन्यथा शत्रुता होती है । मैत्री योग रहने से उन सम्बन्धियों से लाभ, अन्यथा हानि होती है ।

लग्न व स्त्री पद यदि परस्पर केन्द्र त्रिकोण में हों या 3.11 में हों तो जातक राजा होता है ।

इसी प्रकार लग्न पद से धनादि भावों के पदों का भी विचार करना चाहिए ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां पदाध्यायः सप्तविंशः ।। 27 ।।

28

।। अथोपपदाध्यायः ।।

उपपद का ज्ञान :–

अथोपपदमाश्रित्य कथयामि फलं द्विज ! ।
यच्छुभत्वे भवेन्नृणां पुत्रदारादिजं सुखम् ।। 1 ।।
तनुभावपदं विप्र ! प्रधानं पदमुच्यते ।
तनोरनुचराद्यत् स्यादुपारूढं प्रचक्षते ।। 2 ।।